माधवराव सप्रे की कहानियाँ

सम्पादक - देवीप्रसाद वर्मा

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

सप्रेजी के अन्य प्रकाशित ग्रन्थ

माधवराव सप्रे : इतिहास-चिन्तन

माधवराव सप्रे के निबन्ध

सप्रे-निबन्धावली

माधवराव सप्रे की कहानियाँ

सम्पादक
देवीप्रसाद वर्मा

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इ ला हा बा द

प्रकाशक :

हिन्दुस्तानी एकेडेमी,

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९८२

११०० प्रतियाँ

मुद्रक :

स्टैण्डर्ड प्रेस,

२ बाई का बाग, इलाहाबाद

प्रकाशकीय वक्तव्य

हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने हिन्दी के अनेक गौरव-ग्रंथों का प्रकाशन उस समय से आरम्भ किया जब इस क्षेत्र में कार्य करने वाली अनेक संस्थाएँ सक्रिय नहीं थीं। जो साहित्य प्रकाशित किया गया, वह विविधात्मक है और साहित्य की प्रायः सभी विधाओं से सम्बद्ध है। वस्तुतः यह श्रद्धेय पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी की कृपा से सम्भव हो पा रहा है जिन्होंने श्री देबीप्रसाद वर्मा से पाण्डुलिपि प्राप्त करके हिन्दुस्तानी एकेडेमी को उसके प्रकाशन की प्रेरणा दी तथा 'स्पष्टीकरण के दो शब्द' लिखकर कृतार्थ किया। वर्माजी ने भी पूरे उत्तरदायित्व के साथ सप्रेजी की कहानियों का ऐतिहासिक महत्त्व निर्दिष्ट करते हुए अपनी बात कही है। डॉ० भालचन्द्र राव तेलंग ने 'अन्तर्भाष्य-समीक्षा' लिखकर वर्माजी द्वारा किये गये संग्रह के महत्त्व को और अधिक रेखांकित किया है तथा प्रत्येक कहानी की मूल संवेदना को भी अलग-अलग प्रस्तुत किया है।

स्वर्गीय पण्डित माधवराव सप्रे (१८७१–१९३१ ई०) उन हिन्दी-सेवियों में थे जो लोकमान्य तिलक की प्रेरणा से हिन्दी में आये थे। उनकी मातृभाषा मराठी थी, फिर भी राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपना कर उन्होंने हिन्दी की असाधारण सेवा की। वस्तुतः उस काल में एक राष्ट्रीय मण्डल स्थापित था जो लोकमान्य तिलक के क्रांतिकारी विचारों से अनुप्रेरित होकर देश के स्वातंत्र्य-संग्राम में सक्रिय था। गीता-विषयक 'कर्मयोग-रहस्य' जैसा अद्वितीय ग्रंथ लिखकर उन्होंने एक आस्तिक भाव के साथ इस देश को जो प्रेरणा दी, वह गांधीजी के माध्यम से और भी लोकव्याप्त हो गई। सप्रेजी ने मूल मराठी से इसे हिन्दी में अनूदित किया और 'गीता-रहस्य' नाम से इसकी प्रसिद्धि हुई। महाराष्ट्र के गणेशोत्सवों के द्वारा जन-संगठन और स्वातंत्र्य-संघर्ष को जिन लोगों ने बल दिया, उनमें सप्रेजी भी थे। तिलक द्वारा सम्पादित सुविख्यात मराठी पत्र 'केशरी' का जो हिन्दी संस्करण नागपुर से निकाला गया, उसके

सम्पादक पण्डित माधवराव सप्रे ही थे। 'एक भारतीय आत्मा' पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी ने सप्रेजी से प्रेरणा लेकर 'कर्मवीर' निकाला जिसने निर्भीक वाणी और राष्ट्र-प्रेम का अद्वितीय कीर्त्तिमान स्थापित किया। सप्रेजी से प्रेरणा लेनेवालों में अन्य हिन्दी-सेवी पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, लक्ष्मीधर वाजपेयी तथा अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं। निश्चय ही सप्रेजी का व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यन्त प्रभावी था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने देहरादून अधिवेशन में सप्रेजी को सभापति का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया। 'छत्तीसगढ़-मित्र', 'हिन्दी केशरी' और 'हिन्दी ग्रंथमाला' के संचालन, सम्पादन तथा प्रकाशन से जो ख्याति उन्हें मिल चुकी थी, यह उसी का प्रतिफल था। इस संग्रह में प्रकाशित सभी कहानियाँ १९००–१९०१ ई० के बीच 'छत्तीसगढ़मित्र' में लगभग सवा वर्ष के अन्तराल में प्रकाशित हुई थीं। ये छह कहानियाँ हिन्दी कहानी के उद्‌भव की सीमा पर स्थित हैं। इनमें काव्यात्मकता, आदर्शवाद और यथार्थ की मिली-जुली विचित्र स्थिति दिखाई देती है। 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट करती है क्योंकि वह हिन्दी की तथाकथित प्रथम कहानी 'इन्दुमती' के समकक्ष दिखाई देती है। 'सारिका' में श्री कमलेश्वर द्वारा उसके प्रकाशन तथा बाद में श्री देबी-प्रसाद बर्मा और डॉ० बच्चन सिंह आदि के द्वारा वाद-विवाद की स्थिति उत्पन्न हो जाने से वह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। सप्रेजी की कहानियों में बहुत कुछ ऐसा है जो हिन्दी कहानी के स्वरूप-विकास की नितान्त प्रारम्भिक स्थिति का द्योतन करता है। अवश्य ही उससे हिन्दी के इतिहास-लेखकों तथा अनुचिन्तकों को प्रचलित मान्यताओं पर पुनर्विचार करने की प्रेरणा मिलेगी। यह आवश्क नहीं है कि किसी एक ही कहानी को हिन्दी की प्रथम कहानी का श्रेय दे दिया जाय, अनेक कहानियाँ प्राथमिकता के इस श्रेय की भागीदार हो सकती हैं। निःसन्देह सप्रेजी की कहानियाँ ऐसी ही हैं। हिन्दी-जगत् में इनके प्रकाशन का स्वागत होगा—इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

जगदीश गुप्त
सचिव

अनुक्रम

स्पष्टीकरण के दो शब्द

विशाल भवनों की नींव के दृढ़ और विशाल पत्थर गगनचुंबी प्रासादों का बोझ सँभाले अज्ञात पड़े रहते हैं। उन्हें कोई जानता भी नहीं, देखना तो दूर की बात है। "शिलान्यास", "उद्घाटन" आदि के कुछ पत्थर जो इस प्रकार सावधानी से लगाये जाते हैं कि सदैव निगाह में आते रहें, वे अवश्य सभी को दिखायी पड़ते हैं, और फिर प्रासाद के उठने पर उसके खंभों, महराबों में लगे आलंकारिक और सौन्दर्यवर्द्धक पत्थरों पर भी लोगों की दृष्टि जाती है। ऊपरी भाग के अन्य अनेक पत्थरों पर भी लोगों की निगाह पड़ती है, किन्तु नींव के पत्थर, जिनके बिना प्रासाद उठता ही नहीं, अज्ञात और अनभिनन्दित पड़े रहते हैं। शायद यही उनकी नियति है।

आधुनिक हिन्दी के 'शिलान्यास के पत्थर' भारतेन्दु और शायद 'उद्घाटन के पत्थर' आचार्य द्विवेदी तथा अलंकरण के अनेक बहु-विज्ञापित पत्थर आज ज्ञात, चर्चित और अभिनंदित हैं। यह उचित भी है। किन्तु नींव के अनेक बहुत महत्त्वपूर्ण पत्थर विस्मृत कर दिये गये हैं। उनके नाम गिनाना भी व्यर्थ है। मैंने उनकी चर्चा करते समय अनेक 'डॉक्टरों' को उनका नाम सुनकर आश्चर्य से अपनी ओर ताकते देखा है। अतएव उनकी संक्षिप्त तालिका भी देना अनावश्यक समझता हूँ। प्रस्तुत पुस्तक के संदर्भ में उन विशाल और महत्त्वपूर्ण नींव के पत्थरों में से केवल एक ही की चर्चा आवश्यक है। वे थे पण्डित माधवराव सप्रे।

इस भूमिका में भी उनके संबंध में अधिक लिखने का अवकाश नहीं है। इतना कहना ही पर्याप्त है कि आधुनिक हिन्दी के आदिकाल

में वे हिन्दी में एक पहलपूर्ण रचनाकार और प्रेरक शक्ति थे। माखन-लाल चतुर्वेदी ऐसे हिन्दो के कवि और लेखक उनके हो द्वारा प्रेरित और निर्मित थे। उन्होंने हिन्दी गद्य को उसका वर्त्तमान रूप देने में जो कार्य किया, उसका सही मूल्यांकन करना कठिन है। वे अत्यन्त कर्मठ और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। हिन्दी भाषा के प्रचार और साहित्य-साधना की प्रेरणा देने में—विशेष कर पुराने मध्यप्रदेश में—उनका नाम जानकर लोग "करि गुलाब कौ आचमन" लेंगे।

आधुनिक हिन्दी को उसका वर्तमान रूप देने के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी में गहन चिन्तन और साहित्य में गंभीर राजनीतिक चिन्तन को अन्तर्भुक्त करने का सफल कार्य शायद सर्वप्रथम किया। वे गंभीर लेखक, विचारक और शैलीकार थे। उन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं। वे आज के युग में कैसी समझी जायेंगी —यह कहना मेरे लिए कठिन है। मेरे लिए तो इनमें रुचि लेने के लिए यह बात ही पर्याप्त है कि सप्रेजी के समान गंभीर चिन्तक और लेखक ने इस विधा का उपयोग किया।

इस संग्रह से मेरा वादरायण संबंध इतना ही है कि जब श्री देवी-प्रसाद वर्मा ने इन कहानियों का संग्रह और सम्पादन कर लिया, तब उन्होंने मुझे लिखा कि मैं इन्हें प्रकाशित कराने का प्रयत्न करूँ। आज के युग में हिन्दो के प्रायः विस्मृत और पुराने प्रस्तरित (फॉसिलाइज्ड) लेखकों की कोई वस्तु प्रकाशित कराना कितना कठिन है, इसका मुझे बहुत काफी अनुभव है। मैं लेखकों या पुस्तकों का नाम न लूँगा, किंतु मुझे ऐसे ग्रन्थों के लिए प्रकाशकों या संस्थाओं को राजी करने में आठ से चालीस वर्ष तक लगे हैं। प्रकाशक तो व्यवसायी हैं। उनकी हिचक मैं समझ सकता हूँ। किन्तु हिन्दी की संस्थाएँ भी इस मामले में उदार नहीं हैं। कहीं कर्मठ होने पर भी कार्यकर्त्ता कल्पनाशील नहीं मिलते, कहीं पूर्वाग्रह काम करते हैं, कहीं 'लाल-फीताशाही' काम

नहीं होने देती। फिर भी, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, वर्षों से लेकर दशकों तक पीछे पड़े रहने से कुछ ग्रन्थों के प्रकाशन में सफलता मिल जाती है। इस संग्रह को मैंने पहले एक हिन्दी संस्था से (जो वास्तव में 'सरकारी' है) छपाने का प्रयत्न किया, किन्तु वहाँ असफल होने पर मैंने इलाहाबाद की हिन्दुस्तानी एकेडेमी का द्वार खटखटाया।

कई अनिवार्य और अप्रत्याशित कारणों से कुछ समय अवश्य लगा, किन्तु एकेडेमी के साहित्य-प्रेमी, निदग्ध और कल्पनाशील अधिकारियों ने सप्रेजी के महान् व्यक्तित्व और उनके द्वारा इस विधा के प्रयोग का ऐतिहासिक महत्त्व समझा, और उनकी कृपा से सप्रेजी के प्रायः विस्मृत साहित्य की एक अनमोल कड़ी हिन्दी साहित्य-निधि को प्राप्त हो रही है।

श्री तेलंग और श्री वर्मा की विस्तृत और सारगर्भित भूमिकाओं के बाद मेरी भूमिका एकदम "अजागलस्तनश्चैव" निरर्थक है। किन्तु एकेडेमी और वर्माजी द्वारा इस 'गोवर्धन' पर्वत उठाने में, मैं भी ब्रज के बालगोपालों की तरह अपनी भूमिका-रूपी लाठी लगाकर उन भोले ब्रजवासियों की तरह ही मानो यह मूर्खतापूर्ण अनुभव कर रहा हूँ कि मेरी लाठी ने इस गोवर्धन का बहुत कुछ भार सँभाल रखा है।

मैं श्री वर्मा को उनके परिश्रम, श्री तेलंग को उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका और हिन्दुस्तान एकेडेमी को मेरा निवेदन और सुझाव स्वीकार करने के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

अन्तर्भाष्य-समीक्षा

डॉ० भालचन्द्र राव तेलंग

बीसवीं शताब्दी से आरम्भ होने वाली हिन्दी की कहानियों की कथायात्रा 'सरस्वती' में प्रकाशित मौलिक कहानियों से मानी गयी है, परन्तु रायपुर से प्रकाशित सन् १६०० से लेकर अप्रैल, सन् १६०१ तक के 'छत्तीसगढ़मित्र' के पाँच अंकों में छपी स्वर्गीय माधवराव सप्रे की प्रस्थान-विन्दु पर खड़ी इन छह कहानियों का कोई लेखा-जोखा अब तक प्राप्त नहीं हो सका। प्रतिभा के धनी माधवराव सप्रे की कहानी-विधि, कहानी-विधा तथा कहानी का रचना-विधान, तीनों प्रेरणादायक हैं। उनकी कथाविधि साभिप्राय, सोद्देश्य तथा गतिशील है।

विवेच्य इन छह कहानियों में प्रथम दो सुभाषित-रत्न हैं और वे भूमिका के रूप में ग्राह्य हैं। आचार्य भामह ने अपनी काव्य की पंचधा में कथा को चतुर्थ स्थान दिया है। सप्रेजी द्वारा कहानी को सुभाषित-रत्न कहने का आधार भी यही है। सुभाषित की धातु 'भाष्' कहानी की धातु 'कथ्' का ही तो पर्याय है। सुभाषित कहने से कहानी के निबन्धन, अर्थात् रचना तथा निषेवण, अर्थात् उस रचना के श्रवण से है। कहानी का कहानीपन भी यही है। काव्य-निबन्धन तथा काव्य-निषेवण के साधुत्व को वे सुभाषित-रत्नों में समझाते हैं। प्रथम सुभाषित-रत्न में वे पाँच सुभाषित श्लोकों द्वारा अभिजात गुण, दोष-त्याज्यता, व्यवहार-ज्ञान, उदात्तता तथा शब्द-चयन की वांछनीयता की ओर संकेत करते हैं। दूसरे सुभाषित-रत्न में वे लक्ष्मी-सरस्वती की कथा द्वारा 'रत्न' की आकारलघुता को पृथ्वी पर प्राप्त जल, अन्न के ही समान सुभाषित की उपयोगिता से जोड़ देते हैं। संस्कृत श्लोकों से कथानक की आपूर्ति करते हुए सप्रेजी कहानी की विधा को काव्य की अन्य विधाओं से समन्वित रखने का प्रथम प्रयोगात्मक प्रयास करते हैं।

'एक पथिक का स्वप्न' तथा 'सम्मान किसे कहते हैं ?' कथायुग्म 'छत्तीसगढ़मित्र' के मार्च-अप्रैल, सन् १९०० के एक ही अंक में प्रकाशित की गई हैं। इन दो कहानियों की संदृष्टि भारतीय समाजवादी मानवतावाद पर जाती है जहाँ मानव स्वतन्त्रता के नये आयामों की कहानी में सृष्टि करता है, यथा—व्यक्ति के जन्मसिद्ध अधिकार की संचेतना, शोषणमुक्त मानव-समाज की संरचना के साथ संघर्ष के स्थान पर समन्वय की भूमिका।

'एक पथिक का स्वप्न' रचना-विधान की दृष्टि से नाटकीय तत्त्वों पर खेलती हुई सत्रह पृष्ठों की लम्बी कहानी है जिसे तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में नायक का कन्दहार के जंगलों के पशु जगत् से संघर्ष, दूसरे भाग में नायक का खुरासान के ग्राम-प्रान्तर में छिपे नरपशुओं से संघर्ष तथा तीसरे भाग में खुरासान के राजवंश से सम्बन्ध को स्थापित कर नायक के इतिवृत्त को पूरा किया गया है। शौर्य की सच्चाई इसी उन्नीसवर्षीय गरीब तुर्क नायक से प्रतिफलित हुई हैं। जिगीषा, युयुत्सा और करुणा भाव इस नायक के गुण हैं। कहानी का आरम्भ कन्दहार (प्राचीन गांधार) के घने जंगलों की हरीतिमा से फूटकर निकलता है और स्वच्छन्दता का वातावरण सामने दिखाई देता है। नायक के उत्कर्ष के बाद नायक का परिचय मिलता है कि हिन्दुस्तान के इतिहास में सुबुक्तगीन नाम का जो अत्यन्त प्रसिद्ध बादशाह हो गया, वह यही हमारा गरीब पथिक है। उसी के लड़के महमूद गजनवी ने भारतवर्ष को मुसलमानों के अधीन किया। वस्तुतः कहानी का यह अन्त ही इस कहानी का आरम्भ है।

'सम्मान किसे कहते हैं ?' 'छत्तीसगढ़मित्र' के उसी अंक की दूसरी संवाद-शैली में लिखित राजनैतिक प्रेरणा लिये आत्मोत्सर्ग की चारपेजी कहानी है। इसमें जहाँ राजतन्त्र तथा प्रजातन्त्र राज्यों के पारस्परिक युद्ध का बहिर्द्वन्द्व है, वहाँ अपने स्वराज्य को स्वतन्त्र रखे रहने की महत्त्वाकांक्षा में अन्तर्द्वन्द्व की उपस्थिति भी मौजूद है। सुलियट प्रजा का संघर्ष

प्रजातंत्र के प्रत्येक अंग में व्याप्त है। कहानी का यह कार्य-व्यापार पाठकों को निरन्तर सजग बनाये रखता है। नायक झबेला को यद्यपि युद्धबन्दी बना लिया जाता है, पर उसका आन्तरिक उद्वेग गरजता सुनाई देता रहता है। मुक्त होकर संघर्ष करने की उसकी इच्छा उसके अपने पुत्र-स्नेह से टकराती है और उसका अन्तःकरण द्वन्द्व की रस्साकशी का मैदान बन जाता है। नायक झबेला अपने पुत्र फोटू को जामिन रख बलिवेदी पर चढ़ा देता है। कथानक का सहज रूप सरकता और विस्तार पाता जाता है और संघर्ष का केन्द्र फोटू पर सरक जाता है। फोटू का यह उत्तर कि 'शेर का बच्चा शेर ही होगा', उसे किसी अज्ञात टापू पर बन्दी बना देता है। सन्धि के बहाने बुलाया गया २४ सुलियटों का प्रतिनिधि दल संघर्ष का अब तीसरा केन्द्रविन्दु बन जाता है। स्वातंत्र्यप्रिय यह प्रतिनिधि दल आक्रान्ता की आवाज को कुचल देता है। बादशाह अलीपाशा की नीति में परिवर्तन होता है और वह राजनीति की दूसरी नीति 'दामनीति' की शरण जाता है। पाठकों का ध्यान अब सुलियटों के उस धनिक मुखिया पर केन्द्रित हो जाता है जिसे दस लाख अशर्फियों का तथा और बहुत कुछ इनाम देने का लोभ दिया जाता है। कहानी के कथातत्त्व का यही चरमोत्कर्ष है। प्रजातन्त्र राज्य का धनिक यहाँ धनलोभी नहीं होता। वह कहता है—"अपने द्रव्य की थैलियाँ मेरे पास न भेजें, क्योंकि मैं यह नहीं जानता कि इस प्रकार के द्रव्य को कैसे गिनते हैं? सुलियट लोगों का सम्मान शस्त्रास्त्र में है, द्रव्य में नहीं। क्षणभंगुर द्रव्य की आशा न करके शस्त्रों के बल पर अपना नाम अजर-अमर करना और अपने स्वतन्त्रता की रक्षा करना—यही हमारा काम है, यही हमारा धर्म है।"

हम कहते हैं कि यही सम्मान है।

उक्त संवाद-खंड चाहे अभिनयात्मक हो गया हो, चाहे वह अपने प्रश्न का समाधान कर लेता हो, पर कहानी का यह अन्त नहीं हो सकता। ऐसा लगता है कि इस कथा का शेषांश कम्पोजीटरों के हाथों

में कहीं खो गया हो। कहानी अधूरी लगती है। झबेला और फोटू के भविष्य को जानने के लिए पाठकों के पास कोई संकेत नहीं है।

'आजम' कहानीकार के शब्दों में गोल्डस्मिथ के आधार पर रची हुई शिक्षा-विधायक एक कहानी है। इस कहानी-रचना की मूल भावना जीवन-रूप दर्शन है। नीत्शे की यह धारणा भी यहाँ स्पष्ट होती है कि व्यक्तियों के संकल्पों में परिवर्तनशीलता के कारण सभी स्थापित मूल्य मूल्यों के निर्मूल्यीकरण के आवश्यक साधन हैं। इससे शक्तिशाली संकल्पों के सहारे श्रेष्ठ मूल्य स्वतः स्थापित हो जाते हैं। आजम को कहानी का नायक बनाकर कहानीकार ने विभिन्न धर्मों की विद्वेषता की जड़ निष्ठा के बीज को नष्ट कर देने का प्रयास किया है। एक ही चरित्र पर केन्द्रित होने वाली इस कहानी का आरंभ है—'यह पुरुष पहिले बहुत धनवान था……।' कौतूहल और जिज्ञासा लेकर चलने वाली यह कहानी शीघ्र ही अपने मध्य-विन्दु पर पहुँच जाती है और जीवन के परम्परागत मूल्यों का संघर्ष जीवन के सामयिक मूल्यों से हो जाता है और नायक पलायनवादी बन 'तापस' नामक गगनचुम्बी पर्वत की गुफा में आ बसता है और उस आरण्यक में नैतिकता की तलाश करता है। ईश्वरीय सृष्टि की मनोरम गोद उसकी आस्था को उदात्त, व्यापक तथा समर्थ बनाती है। निसर्ग के सौन्दर्य के सामने वह भौतिक जगत् को तुच्छ समझता है और धीरे-धीरे अपने आपको दीन, हीन, अज्ञान और नैराश्य-सागर की भँवर में डूबता-उतराता पाता है। एक दिन जलाशय की सुन्दरता में जलसमाधि ले लेना चाहता है। ईश्वर का भेजा देवदूत उस भक्त के अनेक संशयों के उच्छेदन तथा परोक्ष अर्थ को समझाने के लिए उसे इससे दूर एक नई सृष्टि में ले गया जहाँ दुर्गुणरहित लोग रहते थे। वहाँ वह देखता है कि अरे यहाँ तो क्षुद्र जीवों का यह हाल है कि वे मनुष्यों को त्रास देते हैं। इस जीवदया से मानव-योनि को खतरा है। उसे प्रतीत हुआ कि ईश्वर के बाद मानव ही सबसे बड़ा सर्जक है और ज्ञान उसकी सर्जनात्मकता का उत्कृष्ट

रूप है। मानव-जीवन की वास्तविकता मानव को मानव समझने में है। 'जियो ओर जोने दो' से ही जीवन का सर्वाङ्गीण विकास संभव है। कहानीकार ने आजम को बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी बनाकर नायक को कुंठा और पलायनवाद से बचा लिया है। ईश्वर के प्रति विश्वास ने उसे मानव-जीवन के शाश्वत मूल्यों का ज्ञान दिया। भारतीय जीवन-सिद्धान्त की युगानुरूप व्याख्या भी यही है।

'एक टोकरी भर मिट्टी' दो पेजी मर्मस्पर्शी कहानी है। कहानो के क्षेत्र में संवेदनशील भावना का समुदय तथा मानवीय दायित्व को रूपायित कर लेने की परिकल्पना यहीं से आरंभ होती है। कहानी का आरंभ है—'किसो श्रीमान जमोनदार के महल के पास एक गरीब अनाथ विधवा की झोंपड़ी थी।' यही वह झोंपड़ो है जिसके आलोक में घटनाओं का ताँता लगता है। दूसरे शब्दों में Stream of Consciousness, अर्थात् चेतना-प्रवाह का यहीं से आरंभ होता है और इसो की परिणति संवेदना में होती है जिसकी प्रभावान्विति तथा प्रभाव-समष्टि कहानी का प्रथम संवेदनाशील कहानी का स्थान देती है। 'झोंपड़ी' को यहाँ चरित्र मानना चाहिए जिसके चारों ओर कार्य-व्यापार घूमते हैं। मानव को यह सहज वृत्ति रही है कि वह अधिक से अधिक हथियाना चाहता है। स्थितियों का निर्माण इसो धरातल से होता है। झोंपड़ी जहाँ विधवा के पति-पुत्र-पतोहू को स्मृतियों से जुड़ो हुई होने के कारण ममता की झोंपड़ी है वहाँ सीमा पर झोंपड़ी होने के कारण वह साधन-सम्पन्नता के लिए हथिया लेने के आग्रह की वस्तु है। परिस्थिति-योजना ही यहाँ कहानीकार का कौशल है। धनमद से अंधे जमींदार ने बाल की खाल निकालने वाले वकोलों की थैलो गरम कर अदालत से हुकुम निकलवा कर विधवा और उसकी पाँच साल की पोती को उस झोंपड़ो से निकलवा कर अपना कब्जा करवा हो लिया। पाठकों को सहानुभूति विधवा की ओर हो जातो है। निस्सहाय विधवा को भावनाओं को जबर्दस्त ठेस पहुँचतो है, पर पाँच बरस को छोटी पोती ने जब खाना-पीना छोड़

कर यह कहना शुरू कर दिया कि 'अपने घर चल, वहीं रोटी खाऊँगी उसके लिए समस्या बन गई। वह अब सोचती है कि उस झोंपड़ी की टोकरी भर मिट्टी से यदि चूल्हा तैयार कर रोटी पकाऊँगी तो शायद बच्ची रोटी खाने लगे। श्रीमान् की आज्ञा मिलने पर वह जब उस झोंपड़ी में जाती है तो सारी भूली स्मृतियाँ पुनः जाग जाती हैं और उसकी आँखों से आँसुओं की धार लग जाती है। पाठक भी करुण भाव से उत्तेजित हो जाते हैं। संवेदना को कोमल आधार मिल जाता है। अपनी टोकरी को जब वह झोंपडी की मिट्टी से भर लेती है, तब वह महाराजा से विनय करती है कि जरा वह हाथ लगाकर उस टोकरी भर माटी को अपने निर्बल सिर पर रख लेने में मदद करें। पाठकों का सारा ध्यान अब उस विधवा की टोकरो पर केन्द्रित हो जाता है। सहानुभूति के साथ संवेदना को गति मिलती है और पाठक देखते हैं कि वह उस झोंपड़ी की मिट्टी-भरी टोकरी अपने स्थान से ऊँची नहीं उठती। सहृदय की कल्पना को समझने में देर नहीं, भावुकता के इस क्षण में विधवा के ये शब्द सुनाई पड़ते हैं—'महा राज,नाराज न हों, आपसे तो एक टोकरी भर माटी उठाई नहीं जाती और इस झोंपड़ो में तो हजारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी है, इसका भार आप जनम भर क्यों कर उठा सकेंगे ? आप ही इस बात का विचार कीजिए।' चरित्र की भंगिमा को अवकाश मिला और जमींदार के हृदय में सत्त्वोद्रेक जागा। कहानी को पुनः गति मिली। शीर्षक 'एक टोकरी भर मिट्टी' के भार को सेन्द्रिय बोध मिला और कहानी का अन्त सामने आ गया। कृतकर्म का पश्चात्ताप कर उन्होंने विधवा से क्षमा माँगी और उसकी झोंपड़ी वापस दे दी। विधवा का अर्थपूर्ण मौन 'एक टोकरी भर मिट्टी' के सूक्ष्म इंगिति-संवाद से कहीं अधिक मुखर है। कहानी के रचना-विधान में ऐसा कौशल इसके पूर्व हमें तो दिखाई नहीं पड़ा। संवेदनाशील भावना का समुदय तथा मानवीय दायित्व को रूपायित करने की परिकल्पना स्वर्गीय श्री माधवराव सप्रे की इसी कहानी में मिलती है।

भाषा व्यावहारिक है तथा 'बासी भात, संतमेत, ब्यारी, अधारी, ऐन' जैसे आंचलिक शब्दों से युक्त है तथा चरितार्थ, संभावना, इन्द्रभुवन, सर्वसाक्षित्व, य:कश्चित्, सहवास, शिरसामान्य, हृदय-विचार, हस्तगत आदि शब्दों का प्रयोग भी यहाँ उल्लेखनीय है।

हाँ, डॉ० धनंजय इस 'एक टोकरी भर मिट्टी' को 'ऐतिहासिक सन्दर्भ से च्युत हो जाती है' के दोष से उसे उसके स्तर से उतार देना चाहते हैं। इसकी मौलिकता पर यह कहकर भी संदेह उठाया जाता है कि 'यह नौशेरवाँ का इंसाफ का रूपान्तर है।' यहाँ सप्रेजी का 'एक पथिक का स्वप्न' के समान किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का नाम उल्लिखित नहीं है जिससे कहानीकार की किसी ऐसी प्रेरणा का पता चलता हो। कहानी का कलेवर भी ऐसा कोई संकेत नहीं देता। यहाँ तो विधवा अन्याय और अत्याचारों की शिकार है। यहाँ न बागेदाद (न्याय के बाग) में न्याय या न्यायप्रियता का संदर्भ है और न 'ईवाने कस्रा' की निर्मिति। यहाँ तो 'एक टोकरी भर मिट्टी' के भार का वह सेन्द्रिय बोध कहानीकार को इष्ट है जिससे धनमद का लोप, कर्त्तव्य की प्रेरणा के साथ पश्चात्ताप और क्षमा के रंग निखरते हैं। यदि गुलिस्तान के 'ज़िन्दस्ते नामे फ़रुख़े नौशेरवाँ व अद्ल' को जायसी के शब्दों में 'नौसेरवाँ जो आदिल कहा' कह दिया जाय तो कौन-सी ऐतिहासिक च्युति होती है? क्या कहानी के तन्त्र में अपनी सीमा का विस्तार करने की सहज वृत्ति को नौशेरवाँ ही समझा जायगा?

———

अपनी बात

हिन्दी के अनेक विद्वानों ने स्व० माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है, फिर भी कभी-कभार उस पर बहस आरम्भ हो जाती है। इसी दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया कि स्व० सप्रेजी की कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया जाए, ताकि उनका वास्तविक मूल्यांकन हो सके। स्व० सप्रेजी का कहानी-विधा के प्रति कितना आकर्षण था, उसका प्रमाण निम्नलिखित उनकी ही पंक्तियाँ देती हैं—

"इस समय हमें अपनी पूर्वावस्था के एक शिक्षक का स्मरण हुआ जब हम बिलासपुर में अंग्रेजी शाला में पढ़ते थे। उस समय हमारे शिक्षक श्री रघुनाथ राव यद्यपि बड़े विद्वान न थे, तो भी पूर्ण आत्म-संयमी थे और उपद्रवी और आलसी लड़कों को मार्ग पर लाने में बड़े कुशल थे। वे शारीरिक दण्ड का उपयोग कम करते, वरन नीतिशिक्षा अधिक करते थे। समय-समय पर सुनीति से भरी छोटी-छोटी शिक्षाप्रद कहानियाँ कहकर विद्यार्थियों का मन अभ्यास में लगाते और उन्हें नीतिवान करने का प्रयत्न करते थे। 'सबसे बुरी चीज', 'हाथी को हाथ में लेना', 'दुश्मन', आदि कहानियों का स्मरण हमारे सहपाठियों को अवश्य होगा।" —'छत्तीसगढ़मित्र', माधवराव सप्रे, सन् ·९०१

उपर्युक्त उद्धरण यह प्रमाणित करता है कि १२वर्षीय छात्र के मन में निरन्तर कहानी विधा तैर रही थी और उसका प्रभाव उसके परिपक्व लेखन पर भी था और यही कारण था कि वे इस विधा के प्रति सर्वाधिक प्रयत्नशील थे। जब सप्रेजी हाईस्कूल के छात्र के रूप में गवर्नमेन्ट हाईस्कूल, रायपुर में भर्ती हुए, तब वे अपने शिक्षक नन्दलाल दुबे के सम्पर्क में आये, जिन्होंने न केवल सप्रेजी के मन में हिन्दी के

प्रति अगाध श्रद्धा का निर्माण किया, अपितु सप्रेजो को मेधावी लेखक के रूप में निर्मित करने में सफल हुए।

यदि कहानी को जीवन की कल्पनामूलक गाथा कहें, तब वास्तविकता की प्रतीति तथा प्रामाणिकता के लिए कहानी को अपने जीवन से संपृक्त रखना अनिवार्य शर्त हो जाती है और यही कारण है कि कथाकार उसी दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। सप्रेजी आरम्भ से ही सामाजिक अव्यवस्था के विरोधी तथा गरीबों के मसीहा थे। राष्ट्रप्रेम उनके हृदय में कूट-कूट कर भरा था। वे कहानी विधा को सही रूप देने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील थे। उनकी संक्षिप्त कथायात्रा हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। 'छत्तीसगढ़मित्र' में प्रकाशित उनकी कहानियों की सूची इस प्रकार है—

(१) सुभाषित-रत्न—	जनवरी, १६००
(२) सुभाषित-रत्न—	फरवरी, १६००
(३) एक पथिक का स्वप्न—	मार्च-अप्रैल, १६००
(४) सम्मान किसे कहते हैं—	मार्च-अप्रैल, १६००
(५) आजम—	जून, १६००
(६) एक टोकरी भर मिट्टी—	अप्रैल, १६०१

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारतेन्दु-युग में कहानी का कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं बन पाया था। उस युग को अनुवादों का युग कहना ठीक होगा और उससे हटकर जो कहानियाँ आ रही थीं, उनके मूलस्रोत दो थे—

(१) संस्कृत कथाएँ।
(२) लोककथाएँ।

साथ ही भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी कहानी पर बँगला की छाप अधिक दिखाई देती है। पर, सप्रेजी इन तीनों से हटकर कहानी का भी सही स्वरूप प्रस्तुत करना चाहते थे। इस दिशा में किए गए उनके

प्रयत्नों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है--

जनवरी सन् १६०० में 'सुभाषित-रत्न' शीर्षक कहानी छपी जिसमें अपने कथानक को प्रमाणित एवं बल प्रदान करने के लिए संस्कृत श्लोकों का चयन किया गया है। कथानक पूर्णतः स्वतन्त्र है। इस कहानी का अन्त कितने मार्मिक ढंग से किया गया है—

"इस पृथ्वी में अन्न, जल और सुभाषित—ये तीन ही मुख्य रत्न हैं। मूर्ख लोग हीरा, माणिक, आदि पत्थर के टुकड़े को रत्न कहते हैं। यह सुनकर श्रीमान गृहस्थ अपने मन में बहुत लज्जित हुआ।" विषयान्तर न होगा यदि मैं यह कहूँ कि सप्रेजी के आदर्श कहानी के क्षेत्र में भामह के सिद्धान्त के अनुयायी थे जिसे किसी हद तक हम आज के उपयोगितावाद से जोड़ सकते हैं।

—"पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि गृहमन्नं सुभाषितम् ॥"

आगे चलकर इस शीर्षक पर छोटी-छोटी कहानियाँ संस्कृत श्लोकों के साथ उन्होंने लिखीं जिसे लघुकथा का सफल प्रयास ही कहा जायेगा। पर, ये कहानियाँ संस्कृत श्लोकों के आधार पर लिखी गई हैं या संस्कृत कथाओं की प्रतिछाया मात्र हैं—सम्भवतः यही कारण था कि सप्रेजी ने कहानी को 'सुभाषित-रत्न' शीर्षक देना बन्द कर दिया।

उस समय अनुवादों का प्रभाव कहानियों पर काफ़ी अधिक देखने में आता है। लम्बी कहानियाँ, जासूसी कहानियाँ ज्यादा प्रचलित थीं। सप्रेजी ने उस दिशा में भी प्रयत्न किया और मार्च-अप्रैल के अंक में 'एक पथिक का स्वप्न' नामक कहानी लिखी जो कि १८ पृष्ठों में समाप्त हुई है तथा उसे तीन भागों में विभाजित कर प्रकाशित किया गया है। इस कहानी को यदि किशोरीलाल जी की 'इन्दुमती' के परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो अनायास ही कहना पड़ेगा कि क़रीब-क़रीब वैसी ही कहानी सप्रेजी ने न केवल भारतीय वातावरण में दी, अपितु इस कहानी को ऐतिहासिक कहानी की संज्ञा के साथ प्रस्तुत किया। पाद-

टिप्पणी को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जो कि इस प्रकार है—

"हिन्दुस्तान के इतिहास में सुबुक्तगीन नाम का जो अत्यन्त प्रसिद्ध बादशाह हुआ, वही हमारा गरीब पथिक है। उसके लड़के महमूद गजनवी ने भारतवर्ष को मुसलमानों के आधीन किया। 'एक पथिक का स्वप्न' उस समय के ढर्रे पर चल रही कहानियों की पंक्ति में ही आती है और इसी अंक में उन्होंने निबन्धनुमा ढंग से 'सम्मान किसे कहते हैं' शीर्षक पर देशभक्ति से ओतप्रोत कथानकयुक्त कथा को प्रस्तुत किया जिसे 'नानी की कहानी' की प्रणाली या सपटबयानी या किस्सागोई कह सकते हैं।"

जून, १९०० में उन्होंने गोल्डस्मिथ के आधार पर रची हुई एक शिक्षाप्रद कहानी की घोषणा की जिसमें 'आजम' शीर्षक कहानी लिखी, परन्तु सप्रेजी का कथाकार मौलिक कहानी के प्रस्तुतीकरण-हेतु निरंतर छटपटा रहा था और उनके कथाकार को पूर्ण संतुष्टि सन् १९०१ में 'एक टोकरी भर मिट्टी' लिखने के बाद मिली। इस विधा के प्रति सप्रेजी कितने जागरूक एवं प्रयत्नशील थे, सवा साल की कथायात्रा में उनके विभिन्न प्रयोग उनकी सही कहानी की तलाश को ही प्रमाणित करते हैं। यह बात भी अपना अलग महत्त्व रखती है कि 'एक टोकरी भर मिट्टी' लिखने के बाद सप्रेजी ने कोई भी कहानी नहीं लिखी। इससे हमारे कथन को ही पुष्टि मिलती है कि 'एक टोकरी मिट्टी' हिन्दी की प्रथम कहानी है।

क्योंकि लेखक का उस कहानी के बाद कहानी न लिखना 'एक टोकरी भर मिट्टी' को यही प्रमाणित करता है कि इसे उन्होंने परम लक्ष्य की प्राप्ति के रूप में निरूपित किया था।

श्री कमलेश्वर द्वारा सम्पादित 'सारिका' के 'प्रसंग' स्तम्भ में हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी के रूप में जब 'एक टोकरी भर मिट्टी' को मैंने प्रस्तुत किया, तब लगभग एक वर्ष तक उस पर निरन्तर चर्चा

चलती रही और उस समय उसके पक्ष में सबसे सटीक तर्क डॉ० धनंजय, इलाहाबाद ने रखा था जिसका सारांश इस प्रकार है—

"यह तय है कि सप्रेजी की 'एक टोकरी भर मिट्टी' को ही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी होने का प्रथम गौरव दिया जा सकता है!"

यों कथात्मक तत्त्व तो इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' और राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द के 'राजा भोज का सपना' में ही किसी-न-किसी रूप में मिलने लगे थे, फिर भी यह कथा के प्रारम्भिक विकासमान रूप ही थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक कई मौलिक और अनूदित कहानियाँ लिखी जा चुकी थीं। अनूदित कहानियों में देशी और विदेशी, दोनों ही प्रकार की थीं और जो मौलिक कहानियाँ थीं, वे भी इन अनुवादों म काफ़ी प्रभावित थीं। २०वीं शताब्दी के प्रथम दशक में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती', 'गुलबहार'; रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय'; मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल' आदि कहानियाँ, जिनमें से 'इंदुमती' (१६००) को प्रथम मौलिक कहानी माना गया, मुझे दो आपत्तियाँ हैं। एक तो यह कि ऊपर गिनाई गई कहानियाँ एक जगह से और हिन्दी-भाषी लेखकों द्वारा लिखी जाकर एक ही जगह प्रकाशित हुईं, इसलिए इनमें वैविध्य हो नहीं सकता; कहानी के प्रति एक लेखक का जो दृष्टिकोण रहा होगा, वही दूसरों का भी रहा होगा। उस समय तक वैसे भी साहित्य में समूह ही सब कुछ था। दूसरे, जैसा कि संकेत किया जा चुका है, मौलिक कहानियों पर अनुवादों का प्रभाव बेहद था। 'इंदुमती' उस समय लिखी जाने वाली कहानियों से थोड़ी अलग ज़रूर थी, लेकिन इस पर परदेशी-विदेशी, दोनों तरह के प्रभाव हैं। एक ओर शेक्सपीयर के 'टैंपेस्ट' की छाप है इस पर, तो दूसरी ओर एक राजपूत कहानी का प्रभाव है (हिन्दी साहित्य कोश : भाग १, पृ० २३७)। कहानीपन, जो सबसे स्थूल और प्रारंभिक चीज़ है, का 'इंदुमती' में सर्वथा अभाव है। रही वातावरण की बात, तो उसे

मैं विशेष अहमियत नहीं देता, क्योंकि भारतीयता की अवधारणा पहले साफ़ होनी चाहिये; विदेशी वातावरण में रखकर भी कहानी की स्थिति को भारतीय बनाया जा सकता है। उस समय की कहानियों के बीच 'इंदुमती' की विशिष्टता वातावरण के जरिये स्थापित नहीं होती।

इसके समानान्तर माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' को देखा जाय तो इसकी अलग विशेषताएँ हैं—उन कहानियों के बीच यह आसानी से खो नहीं सकती। अगर रचना-काल का मिलान करें तो 'इंदुमती' और इसमें कोई खास फ़र्क नहीं है। इसकी मौलिकता पर यह कहकर संदेह उठाया गया है कि यह 'नवशेरवाँ का इंसाफ़' का रूपान्तर है। प्रारंभिक काल की कहानियों का संबंध दो स्रोतों से रहा है—एक संस्कृत कथाओं; और दूसरा, फ़ारसी की कहानियों का (हिन्दी साहित्य कोश : भाग २, पृ० २३७)।

एक स्रोत और था लोककथाओं का। 'नवशेरवाँ का इंसाफ़' की जो कथा है, वैसी तमाम कथाएँ अब भी लोक-प्रचलित हैं। 'एक टोकरी भर मिट्टी' पर अगर छाप है तो लोककथाओं की ही है, फ़ारसी कहानी की नहीं। इस कहानी को इसलिए भी पहली कहानी का गौरव दिया जाना चाहिए कि एकसाथ यह लोककथा के स्तर को भी छूती है और साहित्यिक कहानी के स्तर पर भी पहुँचती है। उस समय लिखी जाने वाली कहानियों से यह अलग है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि समूह के पत्र में प्रकाशित न होकर एक सर्वथा भिन्न जगह प्रकाशित हुई। सप्रेजी की कहानी को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानने के और भी कई कारण हैं। इसका शिल्प एकदम अलग है और इस तरह के शिल्प का प्रतिनिधित्व करता है जो आगे के दशकों की कहानियों में क्रमशः विकसित होता गया। इस कहानी और आज की कहानी में एक क्रम सहजता से स्थापित किया जा सकता है। अतिशय भाव-प्रवणता अथवा अतिशय कुतूहल को छोड़कर पहली बार यह कहानी सामाजिक संदर्भों को विकसित करती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसका

संदर्भ अपना है। पूरी सिचुवेशन को जिस तटस्थता से इसमें निर्मित किया गया है, वह इसे सातवें दशक की कहानी के नजदीक ला देती है। कहानी का गठन जटिल न होते हुए भी असाधारण है। मानवीय संबंधों को भी बड़ी सूक्ष्मता से उभारा गया है। ये तमाम बातें इस कहानी को उस समय की कहानियों से अलग और विशिष्ट बनाती हैं। 'इंदुमती' में ऐसा कुछ भी नया नहीं है जिसे आज के कहानी के स्तर पर रेखांकित किया जा सके। इसलिए सप्रेजी की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' ही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी हो सकती है।

'सारिका' में ही सन् १९७१ में डॉ० बच्चन सिंह ने पुनः इसी प्रश्न को उठाया और उन्होंने एक नयी बात कहने का प्रयत्न किया कि किशोरीलाल गोस्वामी-कृत 'प्रणयिनी-परिणय' उपन्यास नहीं, कहानी है। इस संदर्भ में क्योंकि बार-बार विवाद उठाया जाता है, इस कारण मैं डॉ० बच्चन सिंह के उक्त कथन पर अपने विचार रखना आवश्यक समझ रहा हूँ—'एक टोकरी भर मिट्टी' को प्रथम कहानी न कहकर प्रणयिनी-परिणय' को कहना कहाँ तक उचित है ?

सन् १९६८ में 'सारिका मासिक' में प्रकाशित मेरे लेख 'हिन्दी की पहली कहानी' का उद्धरण देते हुए डॉ० बच्चन सिंह ने 'सारिका पाक्षिक' में कहा है—"आज कहानी…के साथ-साथ एक कहानी और चलती है। वह मानवीय, पर शांति की गाथा है। वह कहानी जो ऊपर है, वह भी अपनी अभिव्यक्ति, परिवेश और अंचल में नयी है।" (कमलेश्वर—नई कहानी की भूमिका)। नई कहानी के सबल पक्षधर कमलेश्वर की वाणी किसी सीमा तक प्रस्तुत कहानी में मिलती है।

पहले तर्क में कमलेश्वर का नई कहानी का पक्षधर होना कोई समीक्षा-सिद्धान्त नहीं है जिसके आधार पर उस कहानी को कसा जा सके। यदि डॉ० सिंह कृपापूर्वक इस पंक्ति को दुबारा पढ़ें—आज कहानी के साथ-साथ एक और कहानी चलती है—और फिर 'एक टोकरी भर मिट्टी' को कसें तो वे मानवीय परिणति के बहाने सही तथ्य से विलग न

हो पायेंगे। मैं ज़ोर देकर कहना चाहूँगा कि वाक़ई नई कहानी का पक्षधर होना कोई समीक्षा-सिद्धान्त नहीं है, परन्तु वास्तविकता को जानबूझ कर ओझल करना कौन-सी आलोचना के अन्तर्गत आयेगा ?

डॉ० सिंह का दूसरा आरोप कि सातवें दशक की कहानी का बीज या डॉ० धनंजय के अनुसार सातवें दशक के नज़दीक मानने से 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी ऐतिहासिक संदर्भ से च्युत हो जाती है। यदि इसे परिभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया जाय, तो सारे इतिहास को पुनः लिखना पड़ेगा। एक उदाहरण लीजिए—श्री दिनकर ने घनानंद की एक कविता "धरती में धसौं कि आकाश चीरौं" की चर्चा करते हुए कहा है कि घनानंद का एक पैर रीतिकाल में था और दूसरा पैर छायावाद को पार कर आधुनिक युग में था।

—'रीतिकाल : नया मूल्यांकन', ज्योत्सना मासिक,

रीतिकालीन विशेषांक।

अतएव डॉ० सिंह की परिभाषा के अनुसार घनानंद अब द्विवेदी-युग के कवि हो गए। ऐसी परिभाषा देने वाले को क्या कहा जाये ?

इससे भी रोचक बात उन्होंने और कही है—अपने समय की कहानियों से मेल न खाने के कारण यह सिद्ध होता है कि यह अनुवाद है। पिछले दशक में कहानी, अकहानी, कस्बे या मलवे की कहानी, आदि नामों के साथ जो कहानियाँ आईं, अब उन्हें डॉ० सिंह अनुवाद घोषित कर सकते हैं और उन सभी लेखकों को खारिज कर सकते हैं। ठीक इसी प्रकार डॉ० जगदीश गुप्त ने सनातन "सूर्योदयी कविता" से "आँख कविता" तक ४५ काव्य-विधाओं की चर्चा की है[१] जो अपने समय की कविताओं से अलग थीं, इस कारण अलग नाम से आईं। अस्तु, डॉ० सिंह उन सब को अनुवाद घोषित कर सकते हैं, क्योंकि उनकी परिभाषा की बुनियाद ही है 'मैं कह रहा हूँ और फरमाते हैं...'। संक्षिप्तता

१. 'नयी कविता', भाग ८ : 'नयी कविता : किसिम-किसिम की कविता' के संदर्भ में आपके विचार देखिए।

कहानी की मज्जागत विशेषता नहीं है, इसलिए उस युग के परिप्रेक्ष्य में डॉ० सिंह ने १/२ पेज (एक टोकरी भर मिट्टी) के स्थान पर 'प्रणयिनी-परिणय' को प्रस्तुत किया।

सन् १६०० के संदर्भ में डॉ० सिंह के विचार देखिए—"कहानी और उपन्यास में, ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक कोई ऐसा अलगाव नहीं हो पाया था कि उसके बीच कोई विभाजन-रेखा खींची जा सके।"

इसे यदि आप स्वीकार कर लें तो कम-से-कम सैकड़ों उपन्यासों को हिन्दी साहित्य के इतिहास से ग़ायब कर देना पड़ेगा। जबकि वास्तविकता यह है कि डॉ० बच्चन सिंह कहानी और उपन्यास के बीच आज भी कोई विभाजन-रेखा ठीक से नहीं खींच पा रहे हैं। परन्तु, हमारे पूर्वज उसका अंतर अच्छी तरह समझते थे और यही कारण था कि किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने मासिक का नाम 'उपन्यास' रखा था। साथ ही अपने ६५ उपन्यासों को उपन्यास कहा है। उन्होंने 'इन्दुमती' को कहानी और 'प्रणयिनी-परिणय' को उपन्यास घोषित किया था, क्योंकि दोनों के बीच विभाजन-रेखा स्पष्ट थी। क्या डॉ० सिंह १८८२ में लाला श्रीनिवासदास-कृत 'परीक्षागुरु', जो हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना गया है, को नकार सकते हैं। मैं यहाँ स्थानाभाव के कारण लेखकों के मात्र नाम का स्मरण दिलाना चाहूँगा। शायद, इससे वे अपनी मान्यता बदल दें—बालकृष्ण भट्ट, लज्जाराम, राधाकृष्ण दास, देवकीनंदन खत्री, गहमरी, आदि-आदि। ठाकुर जगमोहन सिंह ने (सन् १८८८) में अपने उपन्यास 'श्यामा-स्वप्न' के मुखपृष्ठ पर यह छपवाया था—"An Original Novel in Hindi Prose"—गद्य में एक मौलिक उपन्यास। क्या इतना पढ़कर भी यदि हम कहानी और उपन्यास का अंतर न स्वीकारें तो इसे विग्राल हठवादिता के सिवाय और क्या कहा जायेगा ? इस तथ्य को हम कैसे भूल जाएँ कि तत्कालीन उपन्यासकारों ने हिन्दी के पाठकों की वृद्धि में कितना अमूल्य योगदान किया है। डॉ० सिंह ने

'चन्द्रकांता', 'चंद्रकांता-संतति' तथा 'भूतनाथ' जरूर पढ़ा होगा और न पढ़े हों तो कहानी और उपन्यासों की विभाजन-रेखा खींचने के निमित्त उसके साथ निम्नलिखित तत्कालीन उपन्यासों को जरूर पढ़ लें—परीक्षा-गुरु, नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान, सती सुखदेवी, दो मित्र, धूर्त रसिकलाल, निःसहाय हिन्दू, ठेठ हिन्दी की ठाठ, काजर-कोठरी, कुसुम कुमारी, नरेन्द्र मोहनी, वीरेन्द्र वीर, त्रिवेणी, प्रणयिनी-परिणय, आदर्श रमणी, आदर्श बाला, और सास-पतोहू। और, यदि इसके बाद भी वे इसका अन्तर न समझें, तब क्या कहा जाय ?

डॉ० सिंह का सबसे बड़ा दावा उपन्यास का कहानी होने का 'हीरक जयन्ती' अंक 'सरस्वती' है। उनके ही शब्दों में 'नूतन ब्रह्मचारी' को कहानी कहा गया है। यह टिप्पणी 'इन्दुमती' कहानी के ऊपर छपी है। परन्तु अंक के सम्पादक ने 'सरस्वती की कहानी' शीर्षक १७ पृष्ठीय लेख में 'नूतन ब्रह्मचारी' को कहीं भी कहानी नहीं लिखा है। पृष्ठ १६ में गोस्वामी से वृन्दावनलाल वर्मा, गुलेरी, रामचन्द्र शुक्ल, बालकृष्ण शर्मा, कौशिक, सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा से लेकर भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, उषा देवी मित्र और अमृतलाल नागर की चर्चा की है।

इसी लेख के पृष्ठ ७ में उन्होंने सन् १६०० के संदर्भ में यह लिखा है—इसी प्रकार हिन्दी में गम्भीर साहित्यिक विवाद का श्रीगणेश 'नैषधचरित चर्चा' और 'सुदर्शन' से होता है। प्रसिद्ध विद्वान् और अपने समय के शीर्ष लेखक पं० माधवप्रसाद मिश्र 'सुदर्शन' के सम्पादक थे। 'नैषधचरित' की उन्होंने समालोचना की थी। उसी का यह उत्तर था। कहानी साहित्य का एक प्रकार है। किन्तु डॉ० सिंह यही कहेंगे कि तत्कालीन साहित्यकार कहानी और उपन्यास समझते ही नहीं थे और न उसकी विभाजन-रेखा ही खींच सकते थे।

मेरा डॉ० सिंह से बहुत ही बिनम्र अनुरोध है कि वे सप्रेजी द्वारा सम्पादित 'छत्तीसगढ़मित्र' की फ़ाइल अवश्य देखें, तब उन्हें यह स्पष्ट हो जायेगा कि वे अंग्रेज़ी साहित्य के कितने निकट थे। यह निर्विवाद तथ्य है कि टॉल्सटाय या गोर्की से भी अधिक संसार के कथा-साहित्य पर एन्तोर जे० राव (सन् १८६०-१९२४) का प्रभाव पड़ा है। वे नगण्य घटनाओं के द्वारा चरित्र का उद्घाटन करते थे। प्रभाव के लिए, प्रभाव के बदले जीवन के लिए प्रभाव ही उनका आग्रह था। छोटे-से-छोटे कलेवर में अधिक-से-अधिक जीवन-आदर्श वे रखते थे। इस प्रकार लघुकथा (शार्ट स्टोरी) की झलक आप 'एक टोकरी भर मिट्टी' में देख सकते हैं।

अन्त में, यह संग्रह प्रस्तुत करते समय परम श्रद्धेय श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी का हृदय से आभारी हूँ कि उनके प्रयत्न एवं प्रेरणा से ही यह कार्य सम्पन्न हो पाया है। उन्होंने 'स्पष्टीकरण के दो शब्द' लिखकर इसे उपकृत किया है। यहाँ श्री कमलेश्वर की चर्चा इसलिए आवश्यक है कि यदि उन्होंने 'सारिका' में इस 'प्रसंग' को उठाकर हिन्दी-प्रेमियों के समक्ष सही स्थिति का आकलन करने का अवसर दिया। साथ ही डॉ० भालचन्द्र राव तेलंग ने 'अन्तर्भाष्य-समीक्षा' लिखकर मेरा उत्साह-वर्धन ही किया है।

—देवीप्रसाद वर्मा

सुभाषित-रत्न

(१)

कुठारमालिका दृष्ट्वा कम्पिताः सकला द्रुमाः ।
वृद्धस्तरुवाचेदं स्वजातिर्नैव दृश्यते ।।

किसी समय एक माली बहुत-सी कुल्हाड़ियाँ रस्सी में बाँध अपने बगीचे में गया। उसको देखते ही सब वृक्ष मारे डर के थर-थर काँपने लगे। तब उनमें से एक पुराने झाड़ ने कहा—"भाइयो! अभी से क्यों डरते हो! जब तक हम लोगों में से कोई भी बेंट, अर्थात् कुल्हाड़ी का डंडा इन कुल्हाड़ियों में शामिल न होगा, तब तक उनसे हमारा नाश नहीं हो सकता।" सच है, स्वजातीय अथवा आत्मीय जन के विश्वासघात से ही नाश होता है, अन्यथा नहीं।

(२)

गणिकागणकौ समानधर्मो
निजपञ्चाङ्गनिदर्शकावुभौ ।
जनमानसमोहकारिणौ तौ
विधिना वित्तहरौ विनिर्मितौ ।।

वेश्या और (कुत्सित) ज्योतिषी का बर्ताव एक ही सा जान पड़ता है। ज्योतिषी अपना पंचांग—पत्रा—दिखाता है और वेश्या भी अपने पंचांग दिखाती है। इसी प्रकार ये दोनों, लोगों के मन मोहने वाले हैं। कदाचित् ऐसा ही समझकर विधि ने इन दोनों को लोगों का द्रव्य अपहरण करने के लिए निर्माण किया है।

(३)

तीर्थानामवलोकनं परिचयः सर्वत्र वित्तार्जनं
नानाश्चर्यनिरीक्षणं चतुरता बुद्धे प्रशस्ता गिरः ।

एते सन्ति गुणाः प्रवासविषये दोषोऽस्ति चैको महान्
यन्मुग्धामधुराधराधरसुधापानं विना स्थीयते।

तीर्थों का अवलोकन, सर्वत्र परिचय, द्रव्य-संपादन, अनेकानेक आश्चर्य पदार्थों का निरीक्षण, बुद्धि-चातुर्य और सुन्दर भाषा—इतने सब गुण प्रवास में हैं। परन्तु उसमें एक बड़ा भारी दोष भी है कि मुग्धांगना के मधुर अधर का अमृत-प्राशन किये बिना रहना पड़ता है।

(४)

सब लोग कंजूस की निन्दा करते हैं। कहते हैं कि जमीन में तिजोरी गाड़कर उस पर पलंग बिछाकर वह रात्रि के समय अकेला ही सोया करता है। भार्या का संग नहीं करता। कारण यह है कि न जाने कदाचित् लड़के-बच्चे हो जायँ और फिर उसके वित्त का हरण कर लें। परन्तु एक कवि ऐसी उत्प्रेक्षा करता है कि नहीं--

कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति।
अस्पृशन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति॥

कृपण के समान दाता न तो आज तक कभी हुआ है और न आगे होगा। दूसरे लोग तो दान देते समय द्रव्य का स्पर्श भी करते हैं, परन्तु कृपण स्वकीय द्रव्य को बिना छुए ही दे देता है (अर्थात् मृत्यु के अनन्तर)।

(५)

अहं च त्वं च राजेन्द्र लोकनाथावुभावपि।
बहुव्रीहिरहं राजन् षष्ठीतत्पुरुषो भवान्॥

एक दिन एक विद्वान महाशय राजा की सभा में गये। कहने लगे कि—हे राजेन्द्र, आप और हम दोनों ही लोकनाथ हैं। फरक इतना ही है कि आप श्रीमान हैं और मैं याचक हूँ—अतएव याचक होने के कारण मेरे नाम में 'लोकनाथ' बहुव्रीहि समास है, जैसे—लोक है नाथ जिसके, वह लोकनाथ और आपके नाम में 'लोकनाथ' षष्ठी तत्पुरुष समास है, जैसे—लोकों का नाथ, लोकनाथ। उक्त महाशय का बुद्धि-चातुर्य देख राजा बहुत प्रसन्न हुए और उनकी योग्य संभावना की।

सुभाषित-रत्न

(२)

एक दिन एक विद्वान ब्राह्मण किसी धनवान मनुष्य के पास गया और कहने लगा—"महाराज ! मैं कुटुम्ब-वत्सल पंडित हूँ। आजकल भयंकर कराल-रूपी दुष्काल ने चारों ओर हाहाकार मचा दिया है। अन्न महँगा हो जाने के कारण अपना चरितार्थ नहीं चला सकता। आप श्रीमान हैं। परमेश्वर ने आपको अटूट सम्पत्ति दी है। कृपा करके मुझे अपना आश्रय दीजिये। इससे मेरी विद्वत्ता की सार्थकता होगी और आपका नाम भी होगा। बिना आश्रय के पंडितों की योग्यता प्रकट नहीं होती। कहा है कि—'बिनाश्रयं न शोभन्ते पण्डिता वनिता लता'—अर्थात्, पण्डित, वनिता और लता बिना आश्रय के शोभा को प्राप्त नहीं होते। अतएव हे महराज, मुझे आश्रयदान दे यश-सम्पादन कीजिये।"

पण्डित जी का उक्त प्रस्ताव सुनकर धनिक महाशय ने कहा—"पण्डित जी, सुनो, द्रव्य-प्राप्ति के लिए हमें कई प्रकार के उद्योग करने पड़ते हैं। हमारे परिश्रम से कमाए हुए धन में तुम्हारा क्या हक्क है ? हरएक मनुष्य को आश्रय देने से देश में आलस की वृद्धि होती है। क्या तुमने पाश्चात्य लोगों का मत नहीं सुना ? तुम तो बड़े विद्वान् हो, फिर दरिद्री की नाईं भीख क्यों माँगते हो ? जो विद्या तुमने सीखी है, उसके बल पर कुछ रोजगार करो; नहीं तो नौकरी करो।"

"सच है," पंडित जी ने कहा, "महाराज, सच है। आप बहुत ठीक कहते हैं। हम विद्वान होकर ऐसे दरिद्री क्यों हैं, इस बात की

शंका जैसी आपको आई, वैसी ही मुझे भी आई थो। इस शंका का निवारण करने के लिए एक दिन मैं प्रत्यक्ष लक्ष्मी के पास गया ओर उससे पूछा कि—

पद्मे मूढजने ददासि द्रविणं विद्वत्सु किं मत्सरो

हे लक्ष्मी तू ऐसे (उस धनिक की ओर अँगुरी बताकर) मूढ़ लोगों को द्रव्य देती है और विद्वानों को नहीं देती, तो क्या तू विद्वानों का द्वेष करती है? इस पर लक्ष्मी ने उत्तर दिया कि—हे ब्राह्मण,

नाहं मत्सरिणी न चापि चपला नैवास्ति मूर्खे रतिः ।
मूर्खेभ्यो द्रविणं ददामि नितरां तत्कारणं श्रूयतां
विद्वान् सर्वजनेषु पूजिततनुर्मूर्खस्य नान्या ःगतिः ॥

"मैं विद्वानों का मत्सर नहीं करतो, मैं चंचल भी नहीं हूँ, और न मैं मूर्खों पर कभी प्रेम रखती हूँ। परन्तु मूर्ख मनुष्यों को नितरां मैं द्रव्य दिया करती हूँ। उसका जो कारण है, वह सुनो। विद्वान लोगों की तो सर्वत्र पूजा हुआ करतो है और मूर्खों को कोई भी नहीं पूछता, इसलिए मैं मूर्खों को द्रव्य दिया करती हूँ क्योंकि उन्हें दूसरो गति हो नहीं है।"

महाराज, लक्ष्मो का यह उत्तर यथार्थ है। आज मुझे उसका अनुभव मिला। आप भी इसी मालिका में हैं, यह बात मुझे विदित न थो।" ऐसा कहकर पण्डित जी अपने घर चले आये।

जिस धनवान पुरुष की सभा में उक्त विद्वान महाशय गये थे, उनके पास चापलूसी करने वाले कई खुशामदो लोग भी बैठे हुए थे। अपने मालिक पर ऐसी मखमलो झड़ने की नौबत देखकर उनमें से एक बोल उठा कि—"पंडित जी, ऐसे संस्कृत श्लोक कहने वाले यहाँ कई आते हैं। क्या आप समझते हैं कि आप बड़े सुभाषित-वक्ता हैं? कुछ ऐसी

बात कहते जिससे हमारे सरकार खुश होते, तो तुम्हारा काम भी हो जाता।"

इस मुँह-देखी बातें करने वाले मनुष्य को अब क्या कहें, बिचारा सुभाषित का महत्व नहीं जानता। समयोचित भाषण करने से चतुर पुरुष को कितना आनन्द होता है, यह उसको मालूम नहीं है। यद्यपि यह धनवान मनुष्य पैसे की गर्मी से अंधा हो गया है तो भी उसके मन को शिक्षा का कुछ संस्कार हुआ है। अतएव इसके सामने सुभाषित की प्रशंसा करना अनुचित न होगा। ऐसा अपने मन में सोचकर पंडित जी ने कहा—"हे महाराज,

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाखाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।।

इस पृथ्वी में अन्न, जल और सुभाषित—ये ही तीन मुख्य रत्न हैं। मूर्ख लोग हीरा, माणिक आदि पत्थर के टुकड़ों को 'रत्न' कहते हैं।" यह सुनकर श्रीमान गृहस्थ अपने मन में बड़ा ही लज्जित हुआ।

———

एक पथिक का स्वप्न

(पहला भाग)

कंदहार के जंगल में से एक गरीब प्रवासी अकेला जा रहा था। जाते-जाते दोपहर का समय हो गया। सूर्य की गर्मी से संतप्त होकर विश्रान्ति लेने के लिए वह एक झाड़ के नीचे बैठ गया। पास ही एक छोटा-सा नाला बहता था। उसके तट पर हरी दूब देखते ही घोड़ा चरने लगा। वहाँ कई प्रकार के बड़े-बड़े वृक्ष और भाँति-भाँति की सुन्दर लताओं के कारण अति रमणीय शोभा दृष्टिगोचर होती थी। कई वृक्ष तो इतने ऊँचे दिखाई देते थे, मानो वे आकाश को भेदकर उस पार चले जाने की इच्छा कर रहे हों ! जंगल इतना घना था कि सूर्य की किरणें पृथ्वी पर पहुँच नहीं सकती थीं। हाँ, कहीं-कहीं झाड़ सूखकर गिर पड़े थे और वन में रहने वालों ने कई झाड़ काट भी डाले थे। उसी जगह से कुछ थोड़ा-सा उजेला आता था। वहाँ जंगली जानवरों को मनुष्यों का कदापि सहवास न रहने के कारण कुछ भी डर नहीं मालूम होता था। इस 'पत्र-निर्मित स्वाभाविक छत्र' की छाया में सब छोटे-बड़े जीव-जन्तु आराम करने के लिए आश्रय ढूँढ़ रहे थे। सचमुच चारों ओर शान्ति देवता का साम्राज्य देख ऐसा जान पड़ता था कि वनश्री का यह निवास-स्थान प्रत्यक्ष इन्द्र-भुवन ही है। सृष्टि की अपूर्व शोभा ऐसे ही स्थानों में दीख पड़ती है। इसके अव-लोकन मात्र से धार्मिक मनुष्य के अंतःकरण में परमात्मा के विषय में आनन्द और प्रेम के तरंग उठने लगते हैं और अनीश्वरवादी के मन पर भी क्षण भर उसकी कुशलता का प्रभाव प्रकट हो ही जाता है।

इस अपूर्व शोभा और चमत्कार को देख वह श्रान्त पथिक बिलकुल विस्मित हो गया। उसकी दृष्टि झर-झर बहते हुए उस समीपवर्ती जलधारा की ओर एकटक लग गई। मन में कुछ गंभीर विचार भी आने लगे। इतने में जिधर उसका घोड़ा चर रहा था, उस तरफ से पत्तों की खरखराहट उसके कान पर पड़ते ही वह चौंक उठा। ज्योंही वह उधर देखता है, त्योंही एक दीर्घ भयंकर गर्जना सुन पड़ी। पलक मारने की देर थी कि उस बटोही ने अपने घोड़े को एक बड़े सिंह के पंजे से घायल होकर जमीन पर गिरते देखा। फिर क्या! क्रोध से लाल होकर खड़ा हो गया और हाथ में तलवार लेकर सिंह के पिछले पैर पर ऐसे जोर से वार किया कि वह कट गया। इतने में दूसरे पैर पर भी एक घाव लगाकर उसको पूरा लँगड़ा ही कर डाला। सिंह घायल होकर, थोड़े कर्कश स्वर में गर्जता हुआ दूर हट गया। परन्तु उसके पंजे की चोट इतनी जबरदस्त लग गई थी कि वह बेचारा घोड़ा अंत समय की वेदना से तड़फड़ाने लगा। अपनी शिकार खो गई और लँगड़ा भी होना पड़ा, इस बात का खेद मानकर सिंह ने अपनी आँखें अंगार के समान लाल कीं, आयाल के बाल खड़े कर दिये और पूँछ पटककर अति घोर गर्जना करता हुआ अगले पैरों से सरकते-सरकते अपने शत्रु पर टूटने के लिए आगे बढ़ने लगा। इतने में उस वीर पुरुष ने तलवार का ऐसा एक हाथ चलाया कि सिंह का मस्तक उसके धड़ से विलकुल अलग हो गया।

घोड़े की मृत्यु देखते ही बटोही अत्यन्त दुःखित हुआ। एक जानवर साथ में था, वह भी चला गया। अब पैरों के बल प्रवास करना पड़ेगा, इस वात की चिंता से उसका मन बहुत उदास हो गया।

कुछ देर में जब उसका मन शांत हुआ तो अपना सामान उठाकर जंगल में चलने लगा। थोड़ी दूर तक जाने के पश्चात् जंगल खतम हुआ और खुला मैदान दीख पड़ा। वहाँ उसने एक हरिणी को अपने बच्चे

के साथ चरते देखा। हरिणी तो डर कर भाग गई, परन्तु वह बच्चा बिलकुल छोटा, हाल ही में पैदा हुआ था, इसलिए दौड़ न सका। बटोही ने उसे उठा लिया और उसके पैर बाँधकर बगल में दबा आगे चलने लगा।

सायंकाल होते ही पड़ाव की जगह देखकर बटोही ने काँधे पर से अपना सामान नीचे उतारा और हिरण के बच्चे को झाड़ से बाँध दिया। लकड़ियाँ मिल गईं और चकमक पत्थर से आगी बनाकर उस बच्चे के पास गया। इच्छा यह थी कि उसको मारकर अपनी जठराग्नि बुझावे। इतने में थोड़ी दूर पर उसकी माँ हताश होकर कुछ काल तक अपने बच्चे की ओर, फिर उस प्रवासी की ओर, कारुण्य-दृष्टि से देखती हुई खड़ी थी। उधर बटोही की नजर पड़ते ही उसने अपनी गर्दन ऊँची कर दी। शरीर शिथिल हो गया, नेत्रों से अश्रु की धारा बहने लगी और अत्यन्त दीन मुद्रा धारण करके उसने बच्चे की ओर अपनी दृष्टि लौटाई। बेचारे बच्चे को यह मालूम भी न था कि उसकी कौन-सी दशा होने वाली है। सिर्फ माता के वियोग से वह खिन्न हो गया था। हरिणी धीरे-धीरे आगे बढ़ी। बटोही भी उसके मन का भाव समझकर कुछ पीछे हट गया। हरिणी एक ही उछाल में बच्चे के पास पहुँच गई और अत्यन्त प्रेम से उसको चाटने-सूँघने लगी। परन्तु उस मनुष्य को निकट आते देख झटपट कूदकर दूर हो गई और फिर भी दुःखित मुद्रा से उसकी ओर एकटक देखने लगी।

यह अद्भुत प्रसंग देखकर पथिक का हृदय दया से आर्द्र हो गया। हरिणी का वात्सल्य भाव अवलोकन कर उसके मन में अनुकम्पा का प्रादुर्भाव हुआ। कारुण्य आदि उत्तमोत्तम चित्त-विकारों से छाती धड़कने लगी। माँ और बच्चे को एकत्र देख इतना आनंद हुआ कि वह फूला न समाया। अन्त में मानसिक उत्साह का प्रभाव तथा पवित्र

अन्तःकरण का संस्कार इतना प्रबल हो गया कि उसे परमात्मा के सर्वसाक्षित्व की याद आई और तुरन्त ही उसने उस बच्चे को कैद से मुक्त कर दिया। उसी दम वह अपनी माँ की ओर दौड़ा। दोनों मिलकर जंगल की ओर मुड़े। परन्तु जाते-जाते मानो अपनी कृतज्ञता दिखलाने ही के लिए उस हरिणी ने अपने प्रसन्न मुख और आनंदपूर्ण नेत्रों से पथिक की ओर एक बार लौट कर देखा और फिर झाड़ी में अपने छोटे बच्चे को लेकर घुस गई।

सज्जन मनुष्यों का चित्त ऐसे सत्कर्मों से अवश्य ही प्रफुल्लित हो जाता है। जीव ऐसी अमूल्य वस्तु दूसरी कोई भी नहीं है। क्या पशुओं को और क्या मनुष्यों को, जीव सभी को प्यारा है। परन्तु यह जानबूझ कर भी, कई लोग बेचारे गूँगे जानवरों का केवल कौतुकार्थ वध करते हैं; उन्हें कुछ दुःख होगा या नहीं--इसबात का बिलकुल सोच-विचार नहीं करते। ऐसे नरपशुओं से क्या कहें ?

हिरण के बच्चे को जीवदान देने के कारण उस पथिक को बहुत ही हर्ष और समाधान हुआ। उसने अपने झोले से थोड़ा-सा बासी भात निकाला और ब्यारी करके उसी जगह रात भर रहने का निश्चय किया। इधर-उधर से पत्ते बटोर कर अपने बिछौने के नीचे बिछाए। जीवदान के समान सत्कर्म करने से वह स्थान उसको अतिप्रिय मालूम होता था। चारों तरफ चन्द्रमा का शुभ्र स्फटिकवत् शीतल प्रकाश और निर्जन बन की अनुपम शांति उसके मन का आह्लाद और भी बढ़ा रही थी। बीच-बीच में श्वापदों की भयंकर गर्जना और उनके चलने की आहट सुन पड़ती थी। बटोही दिनभर का थका हुआ था। बिछौने पर लेटते ही नींद आने लगी। दोपहर की दुर्घटना का स्मरण होते ही उसको अपने घोड़े की याद आई। फिर वह बहुत ही व्याकुल हो गया। परन्तु संध्या समय हिरण के बच्चे को बंधन मुक्त करने के कारण जो समाधान हुआ था, वह अभी

तक वैसा ही बना था। इससे उसका मन कुछ शांत हुआ और इसी अवस्था में उसे गहरी नींद ने आ घेरा। मध्य रात्रि के समय उसने एक स्वप्न देखा, वह यह कि एक तेजस्वी पुरुष (कदाचित् पैगम्बर हो) इतने जगमगाते हुए वस्त्र पहिन कर उसके सन्मुख आया कि उसकी नजर भी वहाँ ठहर न सकी। आते ही उसने कहा—

"आज तूने एक गूँगे जानवर का जीव बचाया है, इस सत्कार्य से परमात्मा बहुत प्रसन्न हुए हैं, इसके पलटे तुझको गजनी का राज्य मिलेगा। जिस प्रकार की भूतदया तूने आज जानवरों के साथ दिखलाई है, वैसी ही सदैव मनुष्यों के साथ रखना।"

इतना कहकर वह दिव्य पुरुष गुप्त हो गया और बटोही भी जाग उठा। चन्द्रमा का प्रकाश अभी तक मलीन नहीं हुआ था। अर्थात् बहुत कुछ रात शेष बची थी। परन्तु उस पथिक को फिर से नींद न आई। उसको यह स्वप्न जागृत अवस्था में भी नेत्रों के सन्मुख दिखाई देता था। इसलिए बिछौने पर पड़े-पड़े अस्ताचल से नीचे उतरते हुए चन्द्रमा की शोभा देखता रहा।

चन्द्रास्त होते ही क्षण भर वहाँ अँधियारा-सा छा गया। फिर पूर्व दिशा में अरुणोदय होने लगा। परन्तु चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। इसीलिए सूर्य का प्रकाश कुछ धुँधला-सा दीख पड़ता था। लता-पर्ण तथा वृक्ष-शाखा, मोती के समान चमकने वाली ओस की बूँदों से सुशोभित हो गई थीं। रात भर में इतनी ओस जम गई थी कि उसके बोझ से पत्ते झुक गये और उनमें से ओस की बूँदें टप-टप-टप करके नीचे गिरने लगीं। थोड़ी देर में सूर्य का प्रकाश पहाड़ियों की चोटी पर से तराई पहुँचा और प्रातःकाल की मंद हवा बहने लगी। इससे सब ओस टपक कर गिर पड़ी और जमीन ऐसी भीग गई कि मानो रात में वर्षा हुई हो। अब बटोही अपने बिछौने पर से उठा।

बिछौने के नीचे जो पत्ते बिछाये हुए थे, उन्हें समेट कर उसने आग सुलगाई और अपना हुक्का तैयार किया। रात को जो भात वच रहा था, उसी का कलेवा किया और पत्ते के दोनों में जो ओस जमा की थी, उसी को पीकर उसने अपना सब सामान अधारी में रख लिया। रास्ता चलने के पहले मक्के-शरीफ की तरफ मुँह फेर कर उसने भक्तिपूर्वक नमाज पढ़ी और राह में अपनी रक्षा करने के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करके सामान कांधे पर उठाया और धीरे-धीरे चलने लगा।

अनजान प्रदेश, जंगल का रास्ता, और साथ में कोई भी नहीं, ऐसी स्थिति में अकेले चलते-चलते बटोही का जी घबरा उठा। रात्रि का स्वप्न और उस दिव्य पुरुष का भविष्य-कथन बारंबार उसके मन में आने लगा। उसे इस बात का पूरा भरोसा हो गया कि बेशक मुझ पर परमेश्वर की कृपा है, उसी की यह आज्ञा समझना। परंतु वह फिर भी सोच करने लगता कि जो मनुष्य इस देश में बिलकुल अनजान है, जिसे इस दुनियाँ में रहने के लिए न तो कोई मकान और न कोई ठिकाना है, जिसे इस संसार में किसी का आधार भी नहीं—वह, वह यःकश्चित् गरीब प्रवासी, गजनी ऐसे बलाढ्य राज्य का अधिपति हो जायगा—यह बात कैसे संभवनीय हो सकती है? रंक से राजा होने का अनुभव स्वप्न ही में मिलता है। जो बात प्रत्यक्ष देखने में कभी नहीं आती, वह स्वप्न भी इस प्रकार होगा—ऐसा सोचकर उसका मन किंचित् सशंक हो गया। तथापि यह कितना भी असंभव क्यों न हो, इसमें परमेश्वर का चमत्कार है, इस बात की कल्पना उसके मन में दृढ़तर समा गई थी।

(दूसरा भाग)

पथिक ऐन जंगल में से चलते-चलते उस जगह पर पहुँचा जहाँ दिन-दोपहर को अँधेरा मालूम होता था। उन झाड़ी के मध्य भाग में

जब आया, तब वहाँ उसे मनुष्यों की आवाज सुनाई देने लगी। कुछ आगे बढ़कर देखता है तो आठ आदमी आग जलाकर उसके आसपास बैठे भोजन कर रहे हैं। उनको खाते देख यह प्रतीत होता था कि वे कई दिन से भूखे हैं, क्योंकि वे अघोरी की नाई सपाटे से निगलते चले जाते थे। यह देख बटोही के मन में शंका आई कि हो न हो, अब शत्रु से गाँठ पड़ी। पर क्या करें? पीछे लौट नहीं सकता, क्योंकि उसको उन्होंने देख लिया था। इसलिए हिम्मत करके आगे बढ़ा और उनसे पड़ाव की जगह पूछने लगा। उनमें से एक ने हँसकर कहा—

"भला, यहीं रह जाओगे तो क्या नुकसान है।" इस पर उन दोनों में बातचीत होने लगी। पथिक ने कहा—

"नहीं, मुझे आगे जाना है। अगर तुम रास्ता बतलाओ तो ठीक है, नहीं तो सेंत-मेंत बड़चड़ करने की मुझे फुरसत नहीं।"

"अच्छा, लेकिन जो लोग इस जंगल में से आते-जाते हैं, वे यहाँ अपनी रक्षा के लिए कुछ महसूल दिया करते हैं। यह बात तुम्हें मालूम है या नहीं?"

"तुमसे सहायता लेने की मुझे कोई गरज नहीं है। इसलिए मैं तुमको एक कौड़ी भी न दूँगा।"

"सुनो! हम यहाँ पर आठ आदमी हैं। क्या तुम इनके साथ पुर सकोगे? जरा नरम होओ और कुछ ख्याल करो कि तुम कहाँ हो? ऐंठ की बातें तो न करो। जब कभी मौका लग जाता है तो हम लोग अपना हक राजा पर भी चला लेते हैं। सच पूछो तो यहाँ के राजा हम ही हैं। तुम्हारा किया कुछ भी न हो सकेगा। सीधी तरह जो कुछ तुम्हारे पास है, चुपचाप हमारे स्वाधीन करो। और वह रास्ता दिखाई देता है, उधर से चले जाओ। नहीं तो तुम्हारे जी पर बीतेगी। समझे? याद रक्खो कि जिस काम को हम अपना हाथ लगाते हैं, उससे फिर पीछे कभी नहीं लौटते?"

"तो क्या मैं लुटेरों के फन्दे में पड़ गया हूँ ?"

"इसमें क्या शक, कहो तो फिर क्या कहना है ?"

"अब यही कहना है कि साम्हने से हट जाओ। मैं तुम्हारी कभी न सुनूँगा। इस बात को खूब सोच रक्खो कि सिर्फ आठ ही नहीं, तुम्हारे सरीखे सौ लुटेरे भी आ जायें, तो मैं अकेला उनके लिए बस हूँ। क्या मुझे अकेला समझ कर डराना चाहते हो ?"

वह चोर अपने साथीदारों की तरफ देखकर जोर से हँसा और फिर बोला कि—

"यह भला आदमी सीधी बातों से नहीं मानता। इसे थोड़ी सी खुराक मिले तो ठीक होगा।" फिर उस पथिक की ओर लौटकर कहने लगा—

"अरे, इधर आ, मेरे साम्हने तो खड़ा रह। अपना सामान नीचे धर दे, और चल दिखला तो सही तुझमें कितना दम है। मैंने तो तुझे पहिले ही कह दिया कि तुझे अपना जीव प्यारा है तो हमारी बात मान ले। क्यों, सुनता है कि नहीं ?"

"यहाँ जीव की पर्वाह किसको है ! मैं तो उसकी कुछ कीमत ही नहीं समझता। खुदा का इरादा होगा तो मैं मरने को अभी तैयार हूँ। पर जब तक जीता हूँ, अपना माल तुम्हें न छूने दूँगा। सुख क्या चीज है, यह तो मुझे आज तक मालूम भी नहीं, और न कभी आगे जानने की कोई उम्मीद ही है, फिर भी मौत से क्यों डरूँ ? मैं जानता हूँ कि तुम हरामखोर हो, तुम्हें दया-माया छूकर भी नहीं निकली। चलो देखूँ तो सही, तुम क्या कर सकते हो मेरा ?" ऐसा कहकर वह पथिक एक झाड़ से टिक गया और अपना सामान नीचे उतार कर हाथ में तलवार ले खड़ा रहा।

उसका विलक्षण ढाढ़स देखकर वे सब आश्चर्य से स्तब्ध हो गये। परन्तु अपना प्रभाव दिखलाने के लिए उनमें से एक चोर ने पथिक के दाहिने हाथ में (जिसमें तलवार थी) ऐसा बाण चलाया कि वह तीर हाथ को छेदकर झाड़ में जा घुसा। उसने तीर को खींच कर निकाल डाला और तलवार चलाने का प्रयत्न किया। पर उसके हाथ से इतना खून बह रहा था कि वह बिलकुल दुर्बल हो गया। तलवार नीचे गिर पड़ी। डाकू उसके बदन पर टूट पड़े और उसकी मुसकें बाँधकर सामान टटोलने लगे। पर जब उसमें कोई भी कीमती चीजें न मिलीं, तो वे बहुत ही निराश हो गए। इतने से माल के लिए अपने जीव की परवाह न करने वाले उस पथिक का उपहास करके, दाँत-ओंठ पीसते हुए सब माल इधर-उधर फेंक दिया। और जैसा कि अंदाज किया था, वैसा कुछ भी माल हाथ न लगा। इससे खिन्न होकर उन चोरों ने पैसे मिलने की नई युक्ति निकाली। बटोही को अच्छा मजबूत कठमस्त देखकर गुलाम बनाकर बेचने का उन्होंने इरादा किया। ऐसे गुलाम की कीमत भी बहुत बढ़िया मिलेगी—यह सोचकर उनमें से एक ने कहा—

"अभी बहादुर इधर आओ। चलो, अब हमारे साथ घर चलो, जब तक तुम्हारा घाव अच्छा न हो जाय, हमारे यहाँ पहुनाई करो। फिर जल्दी ही तुम्हारे लिए कोई दूसरा बन्दोबस्त किया जायेगा। कुछ चिन्ता मत करो।"

फिर पथिक का हाथ उसकी पगड़ी से बाँध दिया और दो चोर उसकी दोनों भुजाओं को पकड़ कर उसे ले चले। वन में कुछ दूर जाने पर कई छोटे-छोटे झोंपड़े नजर आये। वहाँ पहुँचते ही सब लोग ठहर गए। चोर अपने-अपने लड़के-बच्चों के साथ रहते थे। इसलिए उस पथिक के रहने के लिए एक नई झोंपड़ी तैयार की गई। दो-चार दिनों में जब उसका घाव कुछ अच्छा हुआ तो सब चोरों ने एकत्र

होकर उसको अपने सामने खड़ा किया और उनका नायक कहने लगा—

"क्यों भाई ! कहो, तुम्हें हमारा धंधा पसंद आया है या नहीं। इस धंधे में मनुष्य को वहुत चालाक और होशियार रहना चाहिए। तुम तो अच्छे, मोटे-ताजे, मजबूत, शूर जवान दिखाई देते हो। अगर हमारे साथ रहना चाहते हो तो कहो ?"

प्रवासो ने कहा—"मैं बड़ा धूर्त हूँ। अगर तुम मुझे अपने बेड़े में रखना चाहते हो तो रक्खो। पर मैं यह नहीं कह सकता कि मैं तुमसे विश्वासघात कभी नहीं करूँगा।"

"कुछ हरज नहीं, हम तुमको अपने बेड़े में शामिल करते हैं, विश्वासघात करना शूरों का काम नहीं है। तुम पूरे शूर हो, इसी लिए हम तुम्हारा विश्वास करते हैं।"

"अगर ऐसा ही है तो समझता हूँ कि तुम्हारे समान मूर्ख कोई भी नहीं। शूर पुरुष सदैव सम्माननीय होते हैं। ऐसे डाकुओं पर विश्वास रखना शूरों का काम नहीं है। यदि मैं तुम्हारा विश्वास मानकर चुपचाप बैठा रहूँ तो मुझे निरपराधी मनुष्यों को दुःख देने का पाप लगेगा।"

"तुम इतने ईमानदार होगे, यह बात हमें मालूम न थी। इतना अलामत जानते कि तुम बड़े शूर हो। पर अब हमें ऐसा जान पड़ता है कि तू न तो ईमानदार है और न शूर। सिर्फ ढोर चराना या घोड़ा मलना या गुमाबी करना, यही तेरा काम है, बस अभी थोड़ी देर में तुझे तेरे लायक धन्धा मिल जायगा।"

बटोही के दोनों हाथ बंधे हुए थे। उन्हीं को ऊपर उठाकर कहने लगा—

"सच है ये मेरे हाथ बँधे हैं, इसीलिए तुम इतनी, बड़-बड़ कर रहे हो। कायरों का तो यह काम ही है कि जब शत्रु के भय से दूर हों तो शूर-वीर बन जायें। अरे दुष्ट, अधम, परद्रव्यापहारी नीच ! क्या जख्मी और पराधीन को दुर्वचन कहने ही में तू अपनी बहादुरी समझता है ?"

यह सुनकर उस चोर को कुछ लज्जा उत्पन्न हुई। उसने कहा--

"अच्छा शौर्य और सच्चाई किसे कहते हैं, हम नहीं जानते। इसके लिए तकरार करने से कुछ फायदा नहीं। लेकिन आज इतने दिन से तुम हमारे यहाँ हो, तुमको खिलाने-पिलाने और दवा-दारू करने में जो हमारा पैसा लगा है, वह तो मिलना ही चाहिए। तुम्हारे पास तो एक कौड़ी भी नहीं। इसलिए हमारा विचार है कि तुमको गुलाम बनाकर बेच दें और पैसे वसूल कर लें।"

फिर वे चोर उस पथिक को एक नजदीक के गाँव में ले गए। वहाँ किसी व्यापारी के पास बेचकर जो कुछ कीमत मिली, लेकर घर लौट आए। व्यापारी ने उसके घाव पर मल्हम-पट्टी वगैरह लगाई और अच्छे-अच्छे पौष्टिक पदार्थ खाने को दिए। उसका पूर्व वृत्तान्त पूँछकर अच्छी तरह से हिफाजत की। पथिक अपने मन में समझ गया कि उसकी इतनी फिक्र क्यों हो रही है। अब एक दिन अवश्य ही गुलाम बनना पड़ेगा। क्या करे बेचारा ! निरुपाय होकर ईश्वर पर भरोसा रखकर बड़ी कठिनाई से दिन बिताने लगा। जब कभी स्वप्न की याद आ जाती, तो अत्यन्त व्याकुल और उदास हो जाता। स्वप्न में दूत के वचन पर विश्वास रखकर आज तक जितना मनो-राज्य किया, उसके विषय में अब उसको बहुत ही शरम मालम होती थी। स्वप्न-जैसी मिथ्या कल्पना इतनी सत्य प्रतीत हुई--इस बात का उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, और अब जो कुछ नसीब में

लिखा है, वही होगा—ऐसा समझकर संतोष-वृत्ति से रहने का निश्चय किया।

जिस व्यापारी का वर्णन ऊपर कर चुके हैं, वह गुलाम बेचने का रोजगार करता था। जब बटोही बिलकुल चंगा हो गया तो उसको अपने साथ लेकर वह खुरासान को रवाना हुआ। कई दिन तक रास्ता चलने पर वे उस शहर में पहुँचे। वहाँ उसने यह बात प्रकट की कि उसके पास एक अच्छा खूबसूरत जवान गुलाम बिकाऊ है। कई ग्राहक आए, पर कीमत न पटी। व्यापारी को आशा थी कि बहुत कुछ लाभ होगा। इसलिए उसने कीमत भी अधिक बढ़ा दी थी। जब सब ग्राहक लौट गए तो व्यापारी अत्यंत निराश हो गया। भाग्यवशात् उसको एक हिकमत सूझी। उसने विचार किया कि स्वतंत्रता सबको प्यारी होती है, यदि वह इस मनुष्य को मुक्त कर दे तो कदाचित् यह दूसरों की अपेक्षा अधिक द्रव्य देगा, क्योंकि अपने स्वातंत्र्य की आवश्यकता जितनी इसे होगी, उतनी दूसरे किसी को भी नहीं हो सकती। यह विचार मन में आते ही वह हर्ष से फूला न समाया। तुरंत ही उस बटोही के पास गया और बोला—

"क्यों, तुझे अपनी स्वतंत्रता पाने की इच्छा है क्या ?"

"वाह साहिब ! आप यह क्या पूछते हैं ? क्या भूखे को कोई ऐसा भी पूछता है कि तुझे अन्न चाहिए ?"

"अच्छा, तुझे स्वतंत्रता मिल जाय तो उसके बदले तू क्या देगा ?"

"आपको क्या चाहिए ?"

"द्रव्य।"

"नहीं, यह तो कभी नहीं हो सकता। स्वतंत्रता मनुष्य मात्र को

ईश्वर के यहाँ से मिली है, उसे मोल लेने की मेरी इच्छा नहीं। सच पूछिये तो तुम्हारे जैसे नीच रोजगार करने वालों का गला काटना ही मेरा कर्तव्य है। पर इस काम के लिए जितना मुझे अधिकार है, उतना ही तुमको मेरी स्वतंत्रता छीन लेने का है।"

यह सुनते ही उस बूढ़े व्यापारी की नाड़ी ठंडी हो गयी। क्रोध से लाल होकर वहाँ से हट गया और उस गुलाम को छल करने को आरंभ किया। उसके गले में पट्टी बाँधकर दिन भर नीच और कठोर काम कराने लगा। परन्तु दैव योग से यह हकीकत खुरासान के बादशाह अलप्तगीन के कानों तक पहुँची। क्यों न हो, भक्तों का नसीब कभी-न-कभी जागता ही है। बस यही कारण है कि बादशाह ने बहुत-सा द्रव्य देकर उस गुलाम को अपने पास रख लिया।

(तीसरा भाग)

इस प्रकार से वह पथिक बादशाह के महल में पहुँचा। पहिले-पहल तो उसे दूसरे गुलामों के साथ महल के छोटे-मोटे कामों पर रखा गया। फिर उसकी चतुराई और होशियारी देखकर अलप्तगीन ने उसको अपने खास गुलामों में रख लिया। तब से वह निरन्तर बादशाह के समीप रहने लगा। थोड़े ही दिनों में बादशाह बहुत खुश हो गया और उसको एक तरक्की की जगह दे दी। इस गुलाम में बहुत कुछ ऊँचे दर्जे की बुद्धि है---यह सोचकर एक दिन उसने उसका जन्म-वृत्तान्त पूछा। गुलाम ने कहा—

"ऐ शाहंशाह! मुझ गरीब की हकीकत क्या पूछते हो। आज मैं यहाँ गुलामी कर रहा हूँ, उसमें कुछ शक नहीं। पर आज तक मैंने ऐसा कोई काम नहीं किया है कि जिससे मेरे कुल को बट्टा लगे। मैं गरीब हूँ, तथापि स्वतन्त्र हूँ। जब ईरान का बादशाह यजोदजद

शत्रुओं के साथ लड़ाई में हार कर भाग गया, तब उसके कुटुम्ब के सब लोग तुर्किस्थान ही में रह गये। बादशाह को दुश्मनों ने कत्ल कर डाला। उसके कुटुम्ब में तुर्किस्थान के कई लोगों से शादियाँ हुईं। मेरा जन्म उसी के वंश में हुआ है। इसलिए अब मैं तुर्क कहलाता हूँ। जिस समय मेरा जन्म हुआ, मेरे माँ-बाप बिलकुल गरीब थे। हर रोज गुजर होना भी मुश्किल था। तिस पर भी मेरे बाप ने मुझे अच्छी तरह से पढ़ाया, अपने धर्म पर विश्वास रखकर नीति का मार्ग दिखलाया और सदैव सदाचरण करने की सुशिक्षा दी, क्योंकि वह स्वयं कुछ लिखना-पढ़ना जानता था और उस शहर में एक बड़ा विद्वान् और सद्‌गुणी मनुष्य गिना जाता था। युद्ध करना, शिकार खेलना, घोड़े पर सवार होना, हथियार चलाना, आदि वीर पुरुष के योग्य कई उत्तम-उत्तम गुण सीखने का भी मुझे मौका मिला। मैं समझता हूँ कि मेरी शिक्षा राजदरबार में जो कई सरदारों के पुत्र हैं, उनसे यदि अधिक नहीं तो कम भी न होगी। न मालूम क्यों छुटपन ही से मेरे मन की ऐसी भावना हो गई थी कि मैं जन्म भर यों ही गरीब न बना रहूँगा, कभी-न-कभी मुझसे जरूर कोई बड़ा भारी काम होने वाला है। बस इसी कल्पना के जोश में अपनी उमर के उन्नीसवें बरस घर छोड़ बाहर निकल पड़ा। गजनी के लश्कर में पहुँच सिपाहियों में भरती होने के इरादे से गाँव-गाँव, जंगल-जंगल घूमता हुआ चला आया था कि दुर्भाग्य से एक घने बन में डाकुओं से गाँठ पड़ गई। वे आठ आदमी थे। मुझे अकेला देख, हाथ-पैर बाँध कर अपने घर ले गये और हर एक तरह की तकलीफ देने लगे। कुछ दिन पीछे एक व्यापारी के पास मुझे बेच दिया। वहाँ जो दुख मुझे सहना पड़ा, वह कहने के लायक नहीं है। लेकिन यह उस परमेश्वर की ही कृपा हुई कि हुजूर का गुलाम होकर यहाँ आ पहुँचा।”

पथिक की यह वार्ता सुनकर अलप्तगीन बहुत प्रसन्न हुआ और

थोड़े ही दिनों में तरक्की देते-देते उसको समीरुल-उमरा बना दिया। उसने भी कभी ऐसा खराब काम नहीं किया कि जिससे उसके नाम और ओहदे पर बट्टा लगता। अब तो अलप्तगीन ने अपनी सब फौज ही उसे सौंप दी और कहा कि राज्य की कुल व्यवस्था तुम ही देखा करो। यह अधिकार मिलते ही उसने फौज को एक शिस्त से कवायद सिखलाना शुरू किया और लड़ाई की ऐसी अच्छी व्यवस्था रखी कि थोड़े ही दिनों में कई दुश्मनों के दाँत खट्टे हो गए। कई तो आप ही आप डर कर सीधे हो गए। जिधर-उधर शांति होकर बादशाह का अमल पूरा-पूरा स्थापित हो गया। इससे अमीर की बड़ी प्रशंसा होने लगी और फौज का हर एक सिपाही उसको अपनी जान से भी ज्यादा चाहने लगा। अब उसके मन में अपने स्वप्न की कुछ-कुछ सत्यता मालूम होने लगी। अपने पुत्र को इस प्रकार के वैभव मे देखने का सुख उसके बाप के नसीब में न था। पर उसकी माँ अभी तक जीवित थी। उसको उसने अपने पास बुलवा लिया। लड़के की यह बड़ाई देख उसे भो बड़ा आनन्द हुआ।

देखो तो सही ! इस मनुष्य की स्थिति अल्पकाल ही में कैसी बदल गई !! यही पथिक जो कुछ दिन पूर्व गुलामी करता था और सबके सामने घुटना टेक कर माथा नवाया करता था, वह अब खुरासान के सब अमीरों का उमराव हो गया है और उसको सब छोटे-वड़े लोग झुक कर सलाम करते हैं !!! कितना बड़ा अंतर है। यह सच है, पुरुष का भाग्य कब खुलेगा, कोई नहीं जानता। बादशाह अपने अमीर से बहुत ही खुश रहने लगा। राजदरबार में उसकी सलाह लिए बिना कुछ भी काम नहीं चलता था। क्या दरबार में और क्या रणभूमि में उसी की आज्ञा सबको मान्य होती थी। वह अपने दुश्मन को प्रत्यक्ष काल के समान, राजा को जीव और प्राण के तुल्य, प्रजा को एकमात्र आधार और सेना को सदा विजयी सच्चा नायक मालूम होता था।

इसीलिए अब वह अपने दुख के दिन भूल कर सुख से रहने लगा। ऐसी एक भी चीज न थी कि जिस पर उसका मन लगता और वह उसे न मिल सकती। उसके स्वप्न की वात पूरी होने में अब कौन-सी त्रुटि थी !

अलप्तगीन की जहीरा नाम की एक अत्यंत रूपवती और सद्‌गुणी कन्या थी। इस समय वह ऐन जवानी में होने के कारण केवल अद्वितीय मालूम होती थी। बड़े-बड़े सरदारों और अमीरों ने उससे शादी करने की बातचीत निकाली, परन्तु उसने किसी को भी पसंद न किया। जहीरा अपने माँ-बाप की इकलौती लड़की थी। इसलिए अलप्तगीन उसको बहुत ही चाहता था। जव उसने यह हाल सुना कि लड़की ने अपने अमीरों में से किसी को भी पसंद नहीं किया, तब उसके मन में बड़ी भारी चिंता उत्पन्न हुई कि अब वंश कैसे चलेगा। तथापि वह भली भाँति जानता था कि जहीरा कोई साधारण लड़की नहीं है। वह बहुत समझदार और चतुर है। इसलिए उसने इस काम में कुछ छेड़छाड़ करना ठीक न समझा। जो कुछ हो, लड़की के मन से होना चाहिए। उसके अधिकार में किसी तरह की रोक-टोक न करने का बादशाह ने पूरा-पूरा निश्चय कर लिया।

इस किस्से का मुख्य नायक अमीरुल-उमरा बादशाह के महलों में ही रहता था। शाहजादी ने उसे कई बार देखा भी था। कभी-कभी तो आपस में उन दोनों की बातचीत भी हुआ करती थी। इस प्रकार के कई प्रसंग आते-आते एक-दूसरे को चाहने लगे। चाह से परस्पर अनुराग उत्पन्न हुआ और अब अमीर को यह भी मालूम हो गया कि उसके सहवास से शाहजादी खुश होती है। परन्तु जब उसको याद आ जाती कि शाहजादी ने अमीरों को निराश किया है, तो उसका मन उदास हो जाता। तो भी प्रेम के वश होकर आशा करने लगता कि मुझे इसका पलटा अवश्य ही मिलेगा।

जैसे अमीर के मन में वैसे ही शाहज़ादी के भी मन में प्रेम का बीज आरोपित हो चुका था और उनकी परस्पर प्रीति बढ़ती ही जाती थी। अब उनका यह भाव आपस में छिप नहीं सकता था। दोनों की आँखें मिलते ही शाहज़ादी के बर्ताव में जो एक प्रकार की चंचलता दीख पड़ती थी, उससे तो यह बात स्पष्ट हो जाती थी कि उसके मन पर प्रेम का पूरा असर हो चुका है। उसके भाषण और नेत्र-संकेत से ऐसा मालूम होता था कि वह बिलकुल परवश हो गई है। अस्तु, उसकी यह दशा देख अमीर को विश्वास हुआ कि ऐसे समय पर यदि अपना मनोगत विचार शाहज़ादी को बतलाया जावे तो अपमानित होने का डर नहीं है। इसलिए एक दिन शाहज़ादी को प्रसन्न मुद्रा में देख उसने अपना विचार प्रगट किया। उसका परिणाम भी कुछ खराब न हुआ। शाहज़ादी लज्जा से मुस्करा कर नीचे देखने लगी।

अमीर आनन्दातिशय से प्रफुल्लित होकर बोला कि—"ऐ शाह-ज़ादी, इसमें कुछ शक नहीं कि थोड़े दिन पहले मैं इस महल में गुलाम होकर रहता था। पर मेरा जन्म अच्छे राजघराने में हुआ है। मैं समझता हूँ कि मेरे योग से तुम्हारे बड़प्पन में किसी तरह का कलंक नहीं लग सकता।"

"ऐ अमीरुल अमरा" शाहज़ादी ने कहा, "अपने जन्म का साथी और सुख-दुख का भागी ढूँढ़ने में बहुत होशियारी से काम करना चाहिए। ऐसे समय कुल की अपेक्षा शील ही का अधिक महत्व है। धन-दौलत और कुल तो जन्म ही से प्राप्त होते हैं, परन्तु सत्य, शील और उत्तम नीति सहज नहीं मिलती। श्रीमान मनुष्य मिलना कठिन नहीं है। इस दरबार में ऊँचे कुल के बड़े लोग मैंने कई देखे हैं। आज तक यहाँ ऐसे सैकड़ों अमीर आ चुके जो अपने तईं बादशाह से भी बढ़कर

समझते हैं। पर सदाचारी और सुशील मनुष्य का मिलना बहुत ही कठिन है। कर्म, धर्म, संयोग से यदि ऐसा सत्पुरुष मिल जाय तो उसे परमात्मा की कृपा ही समझनो चाहिए।"

"शाहजादी, मैं यह नहीं कह सकता कि मुझमें यहाँ के अमीरों से बढ़कर कोई विशेष सद्गुण है। हाँ, इतना तो अलबत्ता कहूँगा कि यह संपत्ति और प्रतिष्ठा उन्हें अनायास करके ही प्राप्त हो गई है और मैं यद्यपि राजकुल में उत्पन्न हुआ हूँ, तो भी केवल अपने पराक्रम ही से इस योग्यता को पहुँचा हूँ। उन्हें अपनी बपौती का अभिमान है, और मुझे इस तलवार का।"

"ये अमीर," जहीरा अत्यन्त अनुरागपूर्वक बोली, "मेरे नसीब में जो सुख-दुख लिखा है, वह तुम्हारे साथ जन्म भर भोगने के लिए बड़े संतोष से तैयार हूँ। परन्तु इसमें मेरे पिता की भी अनुमति होनी चाहिए। पिता की आज्ञा मुझे शिरसा मान्य है। उनकी इच्छा के विरुद्ध मैं कदापि कोई काम नहीं कर सकती। कन्या का यही धर्म है कि अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करे। जो कन्या धर्म के अनुसार नहीं चल सकती, वह शादी हो जाने पर, स्त्री-धर्म से कैसे रह सकेगी? जिसके हृदय में पितृ-प्रेम नहीं, उसके मन में पति-प्रेम कहाँ से आ सकता है?"

"मैं अभी बादशाह के पास जाकर सब हाल सुनाता हूँ। मुझे विश्वास है कि बादशाह मुझसे बहुत खुश हैं। परन्तु यह तो मानापमान का विषय है। कौन जानता है अपना सम्बन्ध उनको पसंद होगा या नहीं?"

इतना कहकर अमीर ने उसी दिन बादशाह से मुलाकात की और अपना हृदय-विचार उनको कह सुनाया। यह बात सुनते ही क्रोध

अथवा आश्चर्य से चकित न होकर अलप्तगीन ने बड़े सन्तोष से कहा, "तुम जानते हो कि जहीरा मेरी इकलौती लड़की है। मेरे लिए आज सोलह वर्ष से वही एक आनन्द का स्थान है। अब उसको भी सुख मिलने के दिन आ गए। मेरा कर्तव्य यही है कि हर एक प्रकार से उसके सुख की वृद्धि करूँ। बड़े-बड़े शहजादों और अमीरों ने उसकी शादी माँगी, पर उसने एक को भी पसन्द न किया। अगर वह तुमको पसन्द करे तो मेरी मनाई नहीं।" अमीर ने जवाब दिया कि शाहजादी ने मुझ पर अपनी अनुकूलता दिखाने की कृपा की है। सिर्फ आपकी आज्ञा चाहिए।

लड़की की यह इच्छा देखकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। जहीरा ने अत्यन्त योग्य वर को ही अपना प्रेमी दिखाया। इससे वह अपने तईं को धन्यवाद देने लगा। उसने तुरन्त अपनी अनुमति प्रगट की और बड़े समारोह से दोनों की शादी कर दी। जहीरा ने जिन-जिन अमीरों को अस्वीकार किया था, वे अपने मन में जलने लगे। पर शहर के सब लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। सारे खुरासन में आनन्द की बधाई बजने लगी।

शाहजादी के ब्याह के कुछ दिन पीछे, हिजरी सन् ३५१ में अलप्तगीन ने गजनी के बादशाह मनसूर से लड़ाई की तैयारी की। मनसूर हार गया और अलप्तगीन ने अपने दामाद की सहायता से गजनी राज्य हस्तगत कर लिया। आगे सन् ९७५ ई० में (अर्थात् ३६५ हिजरी में) अलप्तगीन का देहान्त हो गया और उसका लड़का अबू इसहाक गद्दी पर बैठा। थोड़े ही दिनों में अपने बहनोई के साथ उसने बुखारा पर चढ़ाई की। मनसूर, अमीर के पराक्रम और शौर्य से अपरिचित न था। उसने उन दोनों का बहुत कुछ आदर सत्कार किया और गजनी का राज्य भी सौंप दिया। परन्तु राज्य-सुख का

उपयोग लेने के लिए अबू इसहाक बहुत दिन तक जीता न रहा । सन् ९७७ ई० में उसके परलोक सिधारने पर प्रजा, अमीर और उमरावों ने एकमति से जहीरा के पति को (अर्थात् हमारे पथिक को) गजनी का बादशाह बनाया ।

इस प्रकार उस पथिक का स्वप्न सच्चा हुआ और जो कुछ दिन पहले गुलाम बनकर दीन दशा में पड़ा था, वही गरीब पथिक एक बलाढ्य राजा हो गया । दिन के हेर-फेर ऐसे ही होते हैं ।

हिन्दुस्थान के इतिहास में सबक्तगीन नाम का जो अत्यन्त प्रसिद्ध बादशाह हो गया, वह यही हमारा गरीब पथिक है । उसी के लड़के महमूद गजनवी ने भारतवर्ष को मुसलमानों के आधीन किया ।

सम्मान किसे कहते हैं ?

कई वर्ष हुए कि तुर्क लोगों ने सुली नाम का ग्रीस देश का एक प्रान्त अपने आधीन कर लेने का विचार किया। उस प्रान्त के लोग तुर्किस्तान के बादशाह को बिलकुल नहीं मानते थे। इसलिए उनको युद्ध में जीतकर अपना अधिकार स्थापित करने के इरादे से अल्ली-पाशा ने सुली पर चढ़ाई की। इस समय सुलियट लोगों का नायक झबेला नाम का एक बड़ा शूर और देशाभिमानी पुरुष था। सुलियट स्वभाव से बड़े तीखे और वचन के बड़े सच्चे थे। उनका भी इरादा हुआ कि अल्ली को अपने दो-दो हाथ दिखावें। कुछ देर तक लड़ाई होती रही। परन्तु पाशा की सेना अधिक थी। इसलिए सुलियट लोग बिलकुल हैरान हो गये और उनका नायक झबेला भी पकड़ा गया। जब वह पाशा के सामने लाया गया, तब उसने उसको अपने वश में कर लेने के इरादे से बहुत आदर-सत्कार के साथ अपने पास बैठाला और फिर कहा—

"सुलियट लोगों को हमारे सुपुर्द कर देओ। बादशाह तुमसे बहुत खुश होवेंगे और तुमको इनाम भी बहुत कुछ मिलेगा। अगर तुम इस बात को न मानोगे तो तुम्हारे बदन का चमड़ा निकलवाकर तुमको यहीं पर मार डालेंगे।"

यह सुनकर झबेला ने उत्तर दिया कि "पहिले मुझे मुक्त तो करो। जब तक मैं ऐसा बँधुआ होकर तुम्हारे ताबे में हूँ, तब तक वे लोग तुम्हारे वश न होंगे। मैं उन्हें समझाऊँगा और तुम्हारा अधिकार कबूल कराने का प्रयत्न करूँगा। फिर जो कुछ होना होगा, सो आपको दीख ही पड़ेगा।"

इस पर अल्ली ने पूछा कि, "तुम अपने साथियों में जाकर फिर हमारे पास लौट आवोगे, इसका हमें विश्वास कैसे हो सकता है ?"

"यह मेरा लड़का तुम्हारे पास जामिन रहेगा।"—झबेला ने अपने पुत्र की ओर अँगुली बतलाकर कहा, "वह मुझे प्राण से भी अधिक प्यारा है। सुलियट लोग मेरी अपेक्षा उसी को अधिक मानते हैं।"

पाशा ने उसका कहना कबूल किया, और झबेला अपने लड़के को उसके पास छोड़कर घर लौट आया। परन्तु उसने दीन होकर अल्ली का अधिकार मान्य करने के लिए अपने लोगों से विनती नहीं की। इसके पलटे ऐसा कहा कि "तुम लोग जितना अभी लड़ रहे हो, उसकी अपेक्षा अधिक धैर्य और आवेश से लड़कर अपनी रक्षा करो। कुछ भी हो जाय, अल्ली के अधिकार का भार अपने सिर पर मत लेओ।" इतने में किसी ने उसके पुत्र का स्मरण किया और पूछा कि उसकी क्या दशा होगी ? तब तो उसके अंतःकरण में एक ओर से अपने राष्ट्र को स्वतन्त्र करने की प्रबल इच्छा और दूसरी ओर से स्वाभाविक पुत्र-प्रेम, इन दोनों का तुमुल युद्ध होने लगा। झबेला सचमुच देशाभिमानी वीर पुरुष था ! अनिवार्य पुत्र-प्रेम के मोहपाश को भी हटाकर उस स्वातंत्र्यप्रिय पुरुष का मन तिल मात्र दुखित नहीं हुआ, वरन् अपने साथियों को जय की आशा से उत्साहित कर युद्ध की सिद्धता करने के लिए बड़े आवेश से प्रार्थना करने लगा।

कुछ काल बीत जाने पर उसने अल्ली पाशा को लिख भेजा कि "ऐ पाशा ! मैं सेर को सवासेर हूँ !! मुझे इस बात का परम संतोष है कि तेरे पास से छूटकर अपने देश को पराधीनता से मुक्त करने के लिए मैं यहाँ आ गया। अब मुझे यह आशा नहीं है कि मेरे प्रिय पुत्र के प्राण बचेंगे। परन्तु इसका बदला लिए बिना मैं कभी न रहूँगा। दूसरों की स्वतंत्रता हरण करने वाले तेरे सरीखे जो अधम मनुष्य हैं,

वे कदाचित् मुझे 'क्रूर और पाषाण-हृदयी पिता' कहेंगे। अपनी मुक्तता कराने के लिए अपने लड़के को मृत्यु के मुख में दे दिया, ऐसा भी वे कहते फिरेंगे। पर वे कुछ भी कहें और कुछ भी बकें, मेरा यही एक उत्तर है कि यदि मैं तेरा कहना मानता और तुझे सुली का राज्य दिला देता तो, 'मैंने अपने स्वदेश बंधुओं से विश्वासघात किया--ऐसा कहकर,' तू मुझे, मेरे पुत्र को और मेरे कुटुम्ब को अवश्य मार डालता। विश्वासघात जैसा निंदादोष माथे पर लेकर पशु के समान मरने की अपेक्षा स्वदेश के निमित्त अपने प्राण को अर्पण करना ही मुझे श्रेयस्कर जान पड़ता है। अब यदि हमारी जीत होगी तो परमेश्वर की कृपा से मुझे कई लड़के हो जायेंगे। पर यदि मेरा पुत्र स्वदेश-हितार्थ अपना जीव देने के लिए सिद्ध न होगा तो उसके जीने ही से क्या लाभ है? वह तो मुझे जीता और मरा समान ही मालूम होगा। फिर वह मेरा पुत्र कभी नहीं कहा जा सकता। इसलिए उसका मरना ही अच्छा है। यदि वह मृत्यु के मुख में पैर रखने का ढाढ़स नहीं कर सकता तो ऐसा कौन कहेगा कि उसका जन्म ग्रीस के स्वतन्त्र संस्थान में हुआ है। बस, इससे अधिक मुझे कुछ नहीं लिखना है।"

यह लेख मिलने के पश्चात् अल्लीपाशा ने झबेला के लड़के को बादशाह के पास भेज दिया। जब उसको वजीर के सामने खड़ा किया तो उसकी छोटी उमर और तेज से भरा हुआ चेहरा देखकर सब लोग अचम्भा करने लगे। कदाचित् कुछ भय बतलाने से यह मान जाय, ऐसा समझकर वजीर ने कहा—"अरे फोटू, तू तो बड़ा खूबसूरत मालूम होता है। पर तेरे बाप ने बड़ी निमकहरामी की है। इसलिए बादशाह ने तुझे आग में जला देने का हुक्म दिया है। बोल, अब क्या कहता है तू?"

शेर का बच्चा शेर ही होगा। इस बंदर-घुड़की से फोटू काहे को डरता। उसने तुरन्त ही जवाब दिया कि—"महाराज, ऐसा न

कीजिए। मुझे आशा है कि मेरे पिता को अवश्य जय प्राप्त होगी, और जब वह युद्ध में जीत जायेगा तो आपसे बदला लिए बिना कभी न रहेगा। इसलिए आप ऐसा कोई काम न करें कि जिससे आपको उसके भीषण क्रोधाग्नि में गिरना पड़े।" यह बात सुनते ही वजीर और बादशाह दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस लड़के का धैर्य-बल देखकर उसको मारने का निश्चय रहित कर दिया और उसको किसी एक टापू में कैदी बनाकर प्रतिबन्ध में रखा दिया।

इधर अल्लीपाशा ने सुलह करने के इरादे से २४ सुलियट लोगों को अपने पास बुलवाया और जब वे उसके पास आए तो वह कहने लगा कि "जब तक तुम्हारा प्रान्त हमारे आधीन न होगा, तब तक तुम यहाँ से जाने न पाओगे। यदि दो-चार दिन में यह काम न हुआ तो तुम जीते जी वापस जाओगे, ऐसी आशा न करो।" यह सुनते ही उन लोगों ने कहा कि--"अरे अल्ली, देख, तू कैसा नीच है। संधि करने के बहाने से हमें यहाँ लाकर तू इस तरह का दुष्ट काम करने को तैयार हुआ है! ऐसे आचरण से तेरी कीर्ति दूषित हो जायगी। तेरा कपट देखकर हमारा निश्चय तो अधिकाधिक दृढ़ होता जाता है कि तेरा अधिकार कदापि स्वीकार न करेंगे। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के निमित्त हम अपना जीव भी देने को तैयार हैं। पर याद रख कि तेरे अधम कृत्य का स्मरण हमारे देश-बंधुओं के हृदय में चिरकाल जागृत रहेगा, और फिर तू हमारा प्रजासत्तात्मक राज्य कदापि पदाक्रान्त नहीं कर सकेगा। बस, तू अब संधि की बातचीत करने योग्य नहीं है। तेरे बोलने में कुछ ठिकाना नहीं।"

जब इस उपाय से भी वे लोग हस्तगत न हुए, तब पाशा ने कुछ द्रव्य देकर वह प्रान्त लेने का विचार किया। सुलियट लोगों में जो मुखिया थे, उनको द्रव्य का लोभ दिखलाकर अपने वश कर लेने के हेतु से डीमोज्त्री नाम के एक श्रीमान गृहस्थ को उसने कहला भेजा

कि यदि तुम हमारा यह काम कर देओ तो तुमको दस लाख अशर्फियाँ और बहुत कुछ इनाम मिलेगा। इसके सिवाय हमारे राज्य में बड़े ओहदे की जगह भी मिलेगी। यह संदेशा सुनकर उस धनिक ने जो जवाब दिया, वह सदैव ध्यान में रखने योग्य है। उसने कहा—"साहेब, आप मुझ पर कृपा-दृष्टि रखते हैं, इसी से मैं धन्य हूँ। मेरी विनती है कि आप कृपा करके अपने द्रव्य की थैलियाँ मेरे पास न भेजें। क्योंकि मैं यह नहीं जानता कि इस प्रकार के द्रव्य को कैसे गिनते हैं। आप इस बात को अच्छी तरह से याद रखें कि मेरे सम्पूर्ण राष्ट्र की बात तो एक ही ओर रहे, परन्तु इस स्वतन्त्र राष्ट्र में एक छोटे से पत्थर की कीमत, आपके राज्य की सब सम्पत्ति से कई गुनी अधिक है। इसी पर से समझ लीजिए कि इस देश का मान-पान कैसा है। सुलियट लोगों का सम्मान शस्त्रास्त्र में है, द्रव्य में नहीं। क्षणभंगुर द्रव्य की आशा न करके शस्त्रों के बल पर अपना नाम अजर-अमर करना और अपने स्वतन्त्रता की रक्षा करना--यही हमारा काम है, यही हमारा धर्म।"

हम कहते हैं कि—यही सम्मान है।

———

आज़म

(Goldsmith's Miscellaneous Essays के आधार पर रची हुई शिक्षा-विधायक एक कहानी)

वह पुरुष पहिले बहुत धनवान था। वह प्राणिमात्र से प्रीति और नम्रतापूर्वक बरताव रखता था। भूखों को अन्न, प्यासे को पानी और नंगे को वस्त्र देना, दुखित जनों के क्लेश निवारण करना और परोपकार के प्रत्येक सत्कर्मों में लगे रहना उसका स्वाभाविक काम था। इसी में उसने अपनी बहुमोल आयु और सब सम्पत्ति व्यय कर दी। जब वह इन धर्मकृत्यों को किया करता तो अपने मन में ऐसा कहता था कि--आज मैं जैसे इन लोगों को सहायता दे रहा हूँ, वैसे ही ये भी प्रसंग आने पर मुझको सहायभूत होंगे। परन्तु परमात्मा की इच्छा कौन जान सकता है? दैववशात् आजम प्रतिकूल काल के चक्कर में आन पड़ा, तब तो उसको अच्छी तरह अनुभव मिल गया कि यह संसार कैसा है। उसकी दीन दशा देख अब उसकी ओर कोई निहारता भी न था। जो लोग उसकी अच्छी अवस्था में निरन्त स्तुति करते थे, वे ही अब निन्दा करने लगे।

जो डरते थे, वे ही उपहास करने लगे; जो उसको सत्यवादी और सुशील कहते थे, वे ही ढोंगी और उड़ाऊ कहने लगे; जो उसके मित्र थे, वे केवल पराये और शत्रु-तुल्य हो गए। सारांश, उसकी सब स्थिति उलट-पलट हो गई और जब उसको यह मालूम हुआ कि अब मुझ पर कोई भी दया नहीं करता, तो उसके खेद और पश्चात्ताप की परमावधि हो चुकी। फिर वह किसी एकान्त स्थान में बैठकर विचार करने लगा कि जिनके हृदय में पाप का भय, धर्म की श्रद्धा और नीति में

पूज्य भाव नहीं है, उनके साथ क्षणमात्र भी रहना अच्छा नहीं। इनकी अपेक्षा बनचरों का समागम श्रेष्ठ है। परन्तु ऐसे खल, नीच, दुराचारियों का संग ठीक नहीं है। महात्माओं ने भी यही उपदेश किया है। कहा है कि 'वरं वनं व्याघ्रगजादि सेवितं' 'इसीलिए अब इन दुष्ट, पापी, कृतघ्न पुरुषों का साथ छोड़कर ऐसे निर्जन स्थान में रहना और शेष आयु अपनी आत्मा में संलग्न करना चाहिये जिससे अधर्मियों का स्पर्श भी न हो।

ऐसा सोचकर तारस नामक पर्वत के गगनचुम्बित शिखर पर जहाँ निविड़ अरण्य था, सिंहादि हिंस्र पशुओं के भयंकर शब्द सुनाई देते थे, प्रचंड वायु बड़े वेग से बहती थी, नदियों के प्रवाह को हृदयभेदक ध्वनि चहुँ ओर गूँज रही थी, अपनी जाति (मनुष्य) से द्वेष करने वाला आजम आ पहुँचा। वहाँ एक छोटी-सी गुहा थी। उसमें वह रहने लगा। उसमें हवा और पानी से बहुत बचाव होता था। दिन के समय बाहर इधर-उधर घूमकर बड़े कष्ट से कंद-मूल-फल इकट्ठा करता और किसी झरने के किनारे बैठकर अपनी प्यास बुझाया करता था। इस तरह अपना जीव बचाने के हेतु आवश्यक उपायों की रचना करके शरीर को सुख देने के लिए आनंद से सोता था। शेष समय इस बात के विचार और आनंद में बिताता था कि दुष्ट, कृतघ्न और अनुपकारी आदमियों से अब कुछ भी संबन्ध न रहा।

उस पर्वत-शिखर के नीचे एक बृहत् सरोवर था। उसमें पर्वत, वृक्ष, लता आदिक हर्षप्रद दृश्यों का प्रतिबिम्ब गिरने से अतीव रमणीय और शोभायमान दिखाई देता था। प्रकृति की यह अपूर्व शोभा देखने के लिए वह कभी-कभी वहाँ जाया करता था। जब वह ऊपर से नीचे उतरता तो चारों ओर विलक्षण सृष्टि-सौन्दर्य देखकर उसके मन में जो आनंद होता था, उसका वर्णन लेखनी से क्यों कर हो सकता है!

उसके मन में ईश्वर की सर्वव्यापकता आदि के संबंध में उदात्त विचार आने लगते और ऐसे उद्‌गार निकलते थे कि अहाह ! परमेश्वर की लीला कैसी अदभुत है ! यह अरण्य स्वभावतः भयानक होता है, परंतु इस समय यह कितना मनोहर मालूम होता है। धन्य है प्रभु, धन्य है तुम्हारी कृति ! कई लोग मन में समझते होंगे कि इस अरण्य से क्या लाभ है ? परन्तु वास्तव में उसकी सुन्दरता और रमणीयता में उतना महत्व नहीं है जितना उसकी उपयोगिता में है। सैकड़ों नदियाँ यहाँ से उत्पन्न होकर नीचे बहती हैं जिनसे प्राणियों को केवल पानी ही का लाभ होता है, किन्तु उनके द्वारा कई देशों की फसल पकती है और मनुष्यों का व्यापार चलता है। यह अरण्य असंख्य प्राणियों का आश्रय-स्थान और अन्न-भंडार है। विविध वनस्पतियों से संयुक्त होकर मनुष्यों की व्याधि दूर करता है। सारांश, यह सब तरह से अच्छा और परोपकारी जान पड़ता है। परन्तु खेद का विषय है कि मनुष्य-जैसा दुष्ट, अधम, अनाचारी प्राणी इस जगत में कोई भी न होगा। जितने दुर्गुण हैं, वे सब उसी में भरे हैं। नदियों की उद्दाम बाढ़, विद्युल्लता, भूकंप और प्रचंड वायु तथा ज्वालामुखी पर्वत से एक बार जगत् का हित होना संभावित है, परन्तु मनुष्यों से नहीं हो सकता। हाय ! हाय ! जिसके दुष्ट कृत्यों से न्यायस्वरूप परमात्मा के कार्य को कलंक-सा लग जाता है, ऐसे मनुष्य-वर्ग में क्यों कर मैंने जन्म पाया। यदि मनुष्य में ये दुर्गुण न होते तो निःसंदेह यह संसार निष्कलंक हो जाता। परमेश्वर जैसा परम दयालु और न्यायी है, उसी प्रकार उसका बनाया जगत् भी होना चाहिये। हे सर्वसाक्षी ! दयालय ! जगदीश ! मुझ दीन को ऐसे अज्ञान और नैराश्य सागर के संशय-रूपी भँवर में क्योंकर डाल रक्खा है ? मेरी ओर तनिक कृपा की दृष्टि से देखो—ऐसा कहते-कहते एक समय आजम उस सुन्दर सरोवर के तट पर पहुँचा और यह सोचकर कि

अब जीव धारण करने का कुछ अर्थ नहीं है, जलसमाधि लेने के निश्चय से आगे बढ़ा। ज्योंही वह उस अगाध जल में कूदने लगा, त्योंही एक वृद्ध मनुष्य जो गंभीर, विवेकशील और तेजस्वी दिखाई देता था, जल के पृष्ठ भाग पर से चलते-चलते उसी की ओर आता हुआ दीख पड़ा। उस समय वह इतना चकित हो गया कि जल में कूदने का अपना विचार बिलकुल भूल गया, और यह कोई प्रभावशाली दैवी पुरुष अपना दर्शन देने के लिये इधर आ रहा है—ऐसा समझ कर वहीं खड़ा हो गया।

वह दिव्य पुरुष आजम के पास आकर कहने लगा कि—"ये भाई! जरा धीरज धर, ऐसा अविचार मत कर, सर्वसाक्षी जगद्रक्षक परमेश्वर ने तेरा सदाचरण देख लिया है और तुझे समझाने के लिए मुझे यहाँ भेजा है। ले मेरा हाथ पकड़ और जिधर मैं जाऊँ, उधर मेरे साथ चला आ। डरने का कुछ प्रयोजन नहीं, तेरे समस्त संशयों को मैं दूर कर दूँगा। यह सुनते ही आजम उसके साथ चलने लगा। जब वे उस तड़ाग के मध्य भाग में पहुँचे तो देवदूत पानी के भीतर घुसा। आजम ने भी वैसा ही किया। इस तरह नीचे ही नीचे बहुत दूर तक चले जाने पर उनको एक नई सृष्टि दिखलाई दी। उसे देखते ही हमारे आजम को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि देखने में इस सृष्टि की रचना ठीक उसी के समान थी जिसे कि वह ऊपर छोड़ आया था।

आजम का चित्त अचम्भे में डबा देख उस देवदूत ने कहा—"ऐ मित्र! किसी समय एक भक्त को तेरे ही समान मनुष्य के स्वभाव के विषय में शंका हुई थी। उसका निवारण करने के लिये जगदीश्वर ने यह नई सृष्टि निर्माण की है। यहाँ जैसे तू चाहता है, वैसे ही दुर्गुण-रहित मनुष्य रहते हैं। यह जगत तेरे ही जगत के समान है। भेद इतना ही है कि ये लोग अनीति अथवा पापाचरण कभी नहीं करते।

तुझे यहाँ रहना हो तो खुशी से रह सकता है। परन्तु इस दुनिया का पूरा-पूरा हाल समझने में तुझे जो कठिनाई पड़ेगी, उसको दूर करने के लिये मैं सदैव तेरे साथ ही रहूँगा।" आजम यह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ कि यह जगत दुर्गुणरहित है। "वाह ! परमेश्वर ने मुझ पर बड़ी भारी कृपा की, मेरी इच्छानुसार रहने के लिये मुझे ऐसा रमणीय स्थान उसने दिया है। धन्य है ! परमेश्वर धन्य है तेरी···"

"बस-बस" देवदूत ने बीच ही में कहा—"पहिले अपने चारों ओर अवलोकन करके जो कुछ पूछना है, सो पूछ ले और फिर धन्यवाद देने में निमग्न होना।"

इस प्रकार बातें करते-करते वे दोनों एक गाँव में पहुँचे। वहाँ देखते हैं तो मार्ग अत्यन्त संकीर्ण, उसमें भी घास जमी हुई है। घर तीन-तीन हाथ के ऊँचे और झोंपड़ी पान-पत्ते से बनी हुई। न तो वहाँ खेत, न खलियान, न बाग है, न बाजार। लोगों में परस्पर हेल-मेल भी नहीं है। हिंस्र पशु बस्ती में इधर-उधर घूम रहे हैं। आनंद या उत्सव का एक शब्द भी सुनाई नहीं देता। यह चमत्कार देखकर आजम ने कहा कि "मेरी पहली सृष्टि और इसमें इतना ही अंतर मालूम देता है कि वह बहुत सुधरी, उत्तम और उन्नत दशा को पहुँची हुई है और यह तो अभी केवल बाल्यदशा, अर्थात् जंगली अवस्था में है। वहाँ जैसे बलवान जीव दुर्बलों पर आक्रमण कर अन्याय करते हैं, वैसे ही यहाँ भी करते हैं न। छिः-छिः क्या करना ? यदि परमेश्वर मेरा कहना मानता तो उपद्रव करने वाले प्राणियों को मैं यहाँ से निर्मूल ही करा देता। इन दुखी-दुर्बलों पर मुझे बड़ी दया आती है। पर क्या करूँ ? कोई किसी को त्रास न दे और इस जगत में सबल और दुर्बल जीव अपनी-अपनी जगह खुशी से रहें तो कितने आनंद की बात होगी।

उसका यह प्रस्ताव सुनकर देवदूत ने कहा कि "ऐ आजम ! तू बड़ा दयावान है। परंतु विचार का स्थान है कि केवल वनस्पति, कंद, मूल और फल से सब प्राणियों का निर्वाह कैसे हो सकेगा। संपूर्ण जीव-सृष्टि के लिए यही आधार बस न होगा। इसीलिये परमेश्वर ने योजना की है कि कई एक पशु जीव-जन्तुओं पर ही अपनी गुजर करते हैं। यदि यह नियम न रहता और सब प्राणियों के लिए केवल अन्न ही का सहारा होता तो मनुष्य का जीवन कठिन हो जाता।"

ऐसी बातें हो रही थीं कि इतने में आजम ने देखा कि दो-तीन बिल्लियाँ किसी आदमी के पीछे लगी हुई हैं और पीछे से खूब धूल उड़ रही है। आजम आश्चर्ययुक्त हो देवदूत से पूछने लगा कि, "महाराज ! यह आदमी इन क्षुद्र प्राणियों का भय मानकर क्यों भाग रहा है ?" उसी समय आजम ने एक और चमत्कार देखा। एक कुत्ता किसी आदमी के पीछे दौड़ रहा है और वह अपने प्राण बचाने के लिए बड़ी व्याकुलता से आश्रय ढूँढ़ रहा है। यह अद्भुत प्रकार के दृश्य देखते ही आजम की बुद्धि कुंठित हो गई। तब देवदूत की ओर झुक कर कहने लगा कि "महाराज ! यह है भी तो क्या ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता। कृपा करके मुझे समझाइये।" देवदूत ने कहा, "ऐ आजम ! इसमें कोई विशेष चमत्कार नहीं है। यहाँ सब लोग तेरे ही समान बड़े दयावान हैं। कहते हैं कि इन छोटे प्राणियों का मान तोड़कर उनको कष्ट देना ठीक नहीं है। उन्हें उनकी इच्छानुसार चलने देना चाहिए। किसी को थोड़ा-सा भी क्लेश देना बड़ा पाप है। इसीलिये यहाँ के सब जीव-जन्तु इतने प्रबल हो गये हैं और उनका कुल भी इतना बढ़ गया है कि वे किसी की कुछ परवाह नहीं करते और मनुष्य को सदैव त्रास दिया करते हैं।"

आजम ने जवाब दिया, "नहीं महाराज ! नहीं !! इन प्राणियों

को इतने प्रबल न होने दीजिये। इनको मारना ही उचित है। नहीं तो इसका परिणाम क्या होगा, आप प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं।" यह सुन देवदूत ने किंचित् मुसकराकर कहा—"क्यों भाई आजम ! क्षुद्र जीवों पर तुम्हारे हृदय में जो करुणा आया करती थी, वह इस समय कहाँ चली गई ? क्या तुम्हारी वह न्यायबुद्धि इतने ही में भाग गई ? प्राणियों को दुःख देना अन्याय है न ?" तुरन्त ही आजम के मन में बोध उत्पन्न हुआ। सिर हिलाकर कहने लगा, "नहीं-नहीं, हे गुरु महाराज ! मैं भूल गया। मैंने जो कुछ कहा, वह व्यर्थ समझिये। यदि इस संसार में हम लोगों को रहना है तो अपने नीचे के वर्ग के प्राणियों पर अन्याय करने का पातक लेना ही होगा।" तब देवदूत ने कहा कि, "अन्य प्राणी और मनुष्यों में चाहे जो सम्बन्ध हो, अब मनुष्यों ही में परस्पर क्या सम्बन्ध है, सो देखना चाहिए।"

———

एक टोकरी भर मिट्टी

किसी श्रीमान जमींनदार के महल के पास एक गरीब अनाथ विधवा की झोंपड़ी थी। जमींनदार साहब को अपने महल का हाता उस झोंपड़ी तक बढ़ाने की इच्छा हुई। विधवा से बहुतेरा कहा कि अपनी झोंपड़ी हटा ले, पर वह तो कई जमाने से वहीं बसी थी। उसका प्रिय पति और एकलौता पुत्र भी उसी झोंपड़ी में मर गया था। पतोहू भी एक पाँच बरस की कन्या को छोड़कर चल बसी थी। अब यही उसकी पोती इस वृद्धापकाल में एक मात्र आधार थी। जब कभी उसे अपनी पूर्वस्थिति की याद आ जाती, तो मारे दुःख के फूट-फूट कर रोने लगती था, और जब से उसने अपने श्रीमान पड़ोसी की इच्छा का हाल सुना, तब से तो वह मृतप्राय हो गई थी। उस झोंपड़ी में उसका ऐसा कुछ मन लग गया था कि बिना मरे वहाँ से वह निकलना ही नहीं चाहती थी। श्रीमान के सब प्रयत्न निष्फल हुए, तब वे अपनी जमींनदारी चाल चलने लगे। बाल की खाल निकालने वाले वकीलों की थैली गरम कर उन्होंने अदालत से उस झोंपड़ी पर अपना कब्जा कर लिया और विधवा को वहाँ से निकाल दिया। बिचारी अनाथ तो थी ही। पाँड़ा-पड़ोस में कहीं जाकर रहने लगी। एक दिन श्रीमान उस झोंपड़ी के आस-पास टहल रहे थे और लोगों को काम बतला रहे थे कि इतने में वह विधवा हाथ में एक टोकरी लेकर वहाँ पहुँची। श्रीमान ने उसको देखते ही अपने नौकरों से कहा कि उसे यहाँ से हटा दो। पर वह गिड़गिड़ा कर बोली कि "महाराज! अब तो झोंपड़ी तुम्हारी ही हो गई है। मैं उसे लेने नहीं आई हूँ। महाराज छिमा करें तो एक विनती है।" जमींनदार साहब के सिर हिलाने पर उसने कहा कि "जबसे यह झोंपड़ी छूटी है, तब से पोती ने खाना-पीना छोड़ दिया है। मैंने बहुत कुछ समझाया, पर एक नहीं मानती। कहा करती है कि अपने घर चल, वहीं रोटी खाऊँगी।

अब मैंने सोचा है कि इस झोंपड़ी में से एक टोकरी भर मिट्टी लेकर उसी का चूल्हा बनाकर रोटी पकाऊँगी। इससे भरोसा है कि वह रोटी खाने लगेगी। महाराज कृपा करके आज्ञा दीजिये तो इस टोकरी में मिट्टी ले जाऊँ।" श्रीमान ने आज्ञा दे दी।

विधवा झोंपड़ी के भीतर गई। वहाँ जाते ही उसे पुरानी बातों का स्मरण हुआ और आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। अपने आंतरिक दु:ख को किसी तरह सम्हाल कर उसने अपनी टोकरी मिट्टी से भर ली और हाथ से उठाकर बाहर ले आई। फिर हाथ जोड़कर श्रीमान से प्रार्थना करने लगी कि, "महाराज कृपा करके इस टोकरी को जरा हाथ लगायें जिससे कि मैं उसे अपने सिर पर धर लूँ।" जमीनदार साहब पहिले तो बहुत नाराज हुए, पर जब वह बार-बार हाथ जोड़ने लगी और पैरों पर गिरने लगी तो उनके भी मन में कुछ दया आ गई। किसी नौकर से न कहकर आप ही स्वयं टोकरी उठाने को आगे बढ़े। ज्योंही टोकरी को हाथ लगाकर ऊपर उठाने लगे, त्योंही देखा कि यह काम उनकी शक्ति से बाहर है। फिर तो उन्होंने अपनी सब ताकत लगाकर टोकरी को उठाना चाहा, पर जिस स्थान में टोकरी रखी थी, वहाँ से वह एक हाथ भर भी ऊँची न हुई। तब लज्जित होकर कहने लगे कि "नहीं, यह टोकरी हमसे न उठाई जाएगी।"

यह सुनकर विधवा ने कहा, "महाराज, ! नाराज न हों। आपसे तो एक टोकरी भर मिट्टी उठाई नहीं जाती और इस झोंपड़ी में तो हजारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी है। उसका भार आप जनम भर क्यों कर उठा सकेंगे ! आप ही इस बात का विचार कीजिये।"

जमीनदार साहब धन-मद से गर्वित हो अपना कर्तव्य भूल गये थे, पर विधवा के उपरोक्त वचन सुनते ही उनकी आँखें खुल गईं। कृतकर्म का पश्चात्ताप कर उन्होंने विधवा से क्षमा माँगी और उसकी झोंपड़ी वापस दे दी।